

सद्गुरवे नमः

# वैराग्य त्रिवेणी

## पूरण वैराग्य शतक

दसवां प्रवचन

आज से सुबह-सुबह परम वैराग्यवान सद्गुरु श्री पूरण साहेब रचित 'वैराग्य शतक' पर कहा जायेगा।

पूरण परख प्रकाश गुरु, सुख स्वरूप कबीर।

बन्दत हौं तव चरण युग, हरण काल की पीर॥ 1 ॥

कबीर पूर्ण पारख प्रकाश स्वरूप हैं, सद्गुरु हैं और सुखस्वरूप हैं। आपके दोनों चरणों की मैं वंदना करता हूं। आप काल की पीड़ा को हरने वाले हैं।

सद्गुरु कबीर साहेब देह से तो आज हैं नहीं, फिर उनके चरणों की वंदना कैसे हो सकती है? विदेहमुक्त हैं, सुखस्वरूप हैं, यही कहा जा सकता है। श्री काशी साहेब ने कहा है, सुख स्वरूप जीव नहीं जानो। तब प्रश्न होता है, सुख स्वरूप कैसे हैं? दुख नहीं है, यही सुख है। यदि किसी को दुख न हो तो सुख की गर्ज न लगे। क्योंकि सुख की गर्ज एक दरिद्रता है। दरिद्र आदमी ही सुख खोजता है, धनी सुख नहीं खोजता। जैसे भूखा आदमी ही रोटी खोजता है, जो तृप्त है वह रोटी क्यों खोजेगा! ऐसे ही जो

सुखी है वह सुख क्यों खोजेगा! सुख की खोज का मतलब है हम दरिद्र हैं। जीव सुखस्वरूप है, मतलब उसमें दुख नहीं है बस, यही सुख है। दुख के नाते बाहरी सुख की कल्पना होती है, दुख न रहने से बाहरी सुख की कल्पना नहीं होती। जहां दुख नहीं, अभाव नहीं, असंतोष नहीं, कष्ट नहीं, तो सुख की ख्वाहिश कैसे हो? हमने आदतें बना रखी हैं और उन आदतों में हम सुख खोजते हैं। जबकि आदतें ही दुख बन जाती हैं। दुख न होना ही सुख है।

जो वर्तमान में ज्ञान-वैराग्य-सम्पन्न हैं, जिनका मन निर्मल है; जिनका राग समाप्त है, वे सद्गुरु हैं, पारख-प्रकाशी और कबीर हैं। उन्हीं के चरणों की वंदना संभव है। वे ही हमारे काल की पीड़ा को हर सकते हैं। वे ही हमें शोध-बोध दे सकते हैं, रास्ता बता सकते हैं। सद्गुरु कबीर ने जो रास्ता बताया उस रास्ते को बताने वाले आज के पारखी संत-गुरु हैं। सद्गुरु कबीर साहेब का शरीर नहीं रहा। उनका केवल ज्ञान रहा। उसी ज्ञान को लेकर संत-गुरु हमारे तक पहुंचाते हैं। इसलिए सद्गुरु कबीर का ज्ञान स्मरणीय है। किन्तु वर्तमान के कबीर की जरूरत है। जो वर्तमान में उस आचरण से चलते हैं, और हमें रास्ता दिखाते हैं, वे मानो कबीर साहेब ही हैं। आज सद्गुरु कबीर साहेब की वंदना करना, स्मृति में उपकार मानकर वंदना है। वे कुछ सुन नहीं सकते, जान नहीं सकते। उन्होंने तो अपना काम कर लिया और शरीर छोड़ दिया। अब जो उनका ज्ञान है, वह लेना है। बीच के संत उस ज्ञान को सुरक्षित रखे इसलिए वे सब वंदनीय हैं। वर्तमान के बोधदाता संरक्षक जिनकी कृपा से, जिनके साहचर्य से, जिनकी रहनी-गहनी से, जिनके वचन से हमारा हित होता है, वे भी वंदनीय हैं। इस प्रकार आदि सद्गुरु कबीर साहेब, मध्य के संत, वर्तमान के सद्गुरु, बोधदाता संत ये सब स्मरणीय हैं, पूजनीय हैं, वंदनीय हैं। इन्हीं से हमारे मन की पीड़ा मिटेगी। संसार के सभी वैराग्यवान संत वंदनीय हैं।

काल पीर तिनकी मिटी, जिनको दृढ़ वैराग्य।

तेहि बिन जिव सब दुखित अति, पचि पचि मरहिं अभाग ॥ 2 ॥

काल की पीड़ा उन्हीं की मिटी जिनके मन में दृढ़ वैराग्य है। इस वैराग्य के बिना सब जीव दुखी हैं, और अभागे पच-पचकर मरते हैं।

यह न छूट जाय, वह न बिगड़ जाय, फलाना रूठ न जाय, ऐसे भोग मिलें, यह देख लूं, यह खा लूं, यह सुन लूं, यह भोग लूं, यह सब हमारे मन की दरिद्रता है। शरीर इंजन है, इसमें कुछ आहार डाल दो, और यह चलता रहे बस। यह जब रुक जायेगा, तब खत्म हो जायेगा। जब तक चलता है तब तक इसके लिए कुछ प्रबंध करना पड़ेगा। परन्तु खास काम है वैराग्य, निर्मोहता।

यह पक्का समझ लो, यहां तुम्हारा एक कण भी नहीं है। जिसको अपना मानते हो, वह धोखा है, महाधोखा है। इस धोखा से जागो। शरीर, उसके नाम, रूप, गुण, कर्म, स्वभाव आजकल में आकाश के समान शून्य हो जाने वाले हैं। इनकी फिर कभी स्मृति भी नहीं होगी और मिलना तो असंभव है। स्मृति भी असंभव है। जो वर्तमान में शरीर और प्राणी-पदार्थ हमारे चारों तरफ लिपटे हैं, इनका हमारा सम्बन्ध अंततः नहीं है। ऐसा समझकर दृढ़ वैराग्य होना चाहिए। सबसे अनासक्ति होना चाहिए। सदैव स्वरूप-विचार और वैराग्य-भाव बने रहें। ये भाव न होने से सब दुखित हैं। इसलिए सब पच-पच कर मरते हैं। राग-द्वेष, ईर्ष्या-निंदा, कलह-कल्पना, अनेक प्रकार के मानसिक ताप में जलते हैं। वैराग्य भाव बना रहे तो कहां राग, कहां द्वेष, कहां परदोष-दर्शन, कहां परनिंदा, कहां देहाभिमान?

इन्द्र दुखी ब्रह्मा दुखी, दुखी विष्णु सब देव।

शिव शेषादिक दुखित हैं, बिन वैराग्य न भेव ॥ 3 ॥

इन्द्र दुखी है, ब्रह्मा दुखी हैं, विष्णु दुखी हैं, सब देवता दुखी हैं, शिव शेषादिक भी दुखी हैं। बिना वैराग्य के दुख का भेद कोई नहीं समझता है।

रेलवे के एक बड़े अफसर थे। जिनका शरीर बड़ा बुलंद, सुन्दर, जिनकी पत्नी सुन्दरी और स्वस्थ तथा सुन्दर-सुन्दर दो बच्चे। रुपये-पैसे से सम्पन्न, कुछ भी कमी नहीं थी। वे कहते थे, अंदर-अंदर से मैं खोखला हूं। मुझे कुछ रास्ता बताइए। मैंने कहा-क्या दुख है, बताओ! तब उन्होंने कहा, मैं समझ नहीं पाता हूं। आदमी दुख भोगता है, लेकिन समझ नहीं पाता है। बस, एक ही दुख है राग। राग के कारण हम भयभीत हैं, पीड़ित

हैं, चिंतित हैं, कलह में डूबे हैं। राग बड़ा प्यारा लगता है, और वही फोड़ा है, मवाद है, नरक है। बिना वैराग्य के दुख का भेद कोई समझ नहीं सकता। जब अखण्ड वैराग्य होता है, तब मन में दुख नाम की कोई चीज नहीं होती है।

राजा दुखी परजा दुखी, दुखी रंक प्रभु भेष।

धनवन्त निर्धन दुखी, निर्णय करिके देख॥ 4॥

निर्णय करके देखो, धनवान और निर्धन, राजा और प्रजा, दरिद्र और स्वामी तथा साधुवेषधारी वैराग्य के बिना सब दुखी हैं।

वैराग्य के बिना राजा दुखी हैं, प्रजा दुखी हैं, रंक दुखी हैं, प्रभु दुखी हैं। 'प्रभु' नाम स्वामी, बड़े-बड़े आचार्य, महामंडलेश्वर, जगद्गुरु, बड़े-बड़े पूज्य दुखी हैं। उनमें कुछ शुभाचार है, मर्यादा पा गये, धन-मठ पा गये, पूजे जाते हैं, वैराग्य ढीला है तब दुख के सिवा और क्या होगा। बिना वैराग्य के यह सब थोथा है। बाहर की मर्यादा सब थोथी है। महंत या बड़ा अधिकारी जो चुना जाता है, वह बड़ा सेवक है। समाज की गुलामी करने के लिए वह नियुक्त हुआ है। अपने को सरदार न माने! सेवा करना है उसे और वैराग्य से रहना है। अतः स्वामी लोग दुखी हैं। भेषधारी दुखी हैं। साधुवेष धरे हैं, लेकिन राग-द्वेष करते हैं। काम-वासना में जलते हैं। क्रोध-वासना में जलते हैं। परनिंदा में जलते हैं। परदोष-दर्शन में जलते हैं; तब भेष धरने से क्या होगा?

धनवान दुखी हैं और निर्धन दुखी हैं। निर्णय करके देखो, वैराग्य के बिना कोई सुखी नहीं होता।

तन धरि सुखिया कोइ नहीं, सब कोइ दुखिया लोग।

बिन वैराग्य ठहरै नहीं, कहा ज्ञान कहा योग॥ 5॥

शरीरधारी कोई सुखी नहीं। संसार के सब लोग दुखी हैं। क्योंकि वैराग्य नहीं है। बिना वैराग्य के कैसे ठहर सकते हैं? मन क्यों नहीं ठहरता है? क्योंकि मन में वैराग्य नहीं है। और राग से कोई फायदा नहीं। यदि भवितव्य के लिए सोचे, तो जो होना होगा सो होगा। जो नाशवान है वह स्थिर कैसे होगा? और जो प्रवाह है, वह रुक कैसे सकता है? जो होनी है

वह रुक कैसे सकती है? जो होना है वह तो होगा ही। हाय-तौबा मत करो! निष्फिक्र हो जाओ, निश्चित हो जाओ, निर्भय हो जाओ।

*खुल खेलो संसार में, बाँधि न सकै कोय।*

*बाल न बांका करि सकै, जो जग बैरी होय ॥ कबीर साखी ॥*

शुद्ध वैराग्य से जीवन व्यतीत करो, तो कोई तुम्हें संताप नहीं दे सकता है। यह मत सोचो कि बच्चे कैसे जीयेंगे, यह समाज कैसे चलेगा। ये सब अपने आप चलेगा। यह संसार, टूटा-फूटा है, और सब चलता भी रहता है। तुम अपने को चलाओ, अपने को ठहराओ। अपना काम है, अपने को जीवन्मुक्त करना।

**कहा ज्ञान कहा योग।** वैराग्य के बिना कहां ज्ञान और कहां योग है? बिना वैराग्य के ज्ञान किस काम का! वह वाचिक ज्ञान है। बौद्धिक ज्ञान कोई ज्ञान नहीं। वैराग्य युक्त ज्ञान, ज्ञान है। ज्ञान की परिभाषा वैराग्य है। ज्ञान की परिभाषा त्याग है। योग भी कैसा बिना वैराग्य के? योग चित्तवृत्ति का निरोध है। बिना वैराग्य के चित्तवृत्ति का निरोध असंभव है। इसीलिए योगदर्शन में पतंजलि महाराज वैराग्य की कील बराबर ठोंकते गये हैं। सांख्य कहता है “ध्यानं निर्विषयं मनः” मन का निर्विषय हो जाना ही ध्यान है।

**आशा तृष्णा ना मिटी, मिटेउ न मन अनुराग।**

**कलह कल्पना ना गई, तब लग नहिं वैराग ॥ 6 ॥**

जब तक आशा-तृष्णा और मन का सांसारिक आकर्षण नहीं नष्ट हुए और कलह-कल्पना नहीं समाप्त हुई, तब तक वैराग्य नहीं है।

जितने साधक हैं, सब इस दोहे को याद कर लें। याद तो है ही और इससे अपने को रोज कसैं, क्षण-क्षण कसैं। यह साखी वैराग्य की कसौटी है। भोगों की आशा और जो प्राप्त है उसकी तृष्णा का त्याग। मन का अनुराग, मोह, खिंचाव, जो प्राणियों में, पदार्थों में, अनुकूल वस्तुओं में और व्यक्तियों में है, उसका त्याग। कलह झगड़ा। राग-द्वेष, परदोष-दर्शन, परनिंदा, झगड़ जाना ये सब कलह में आते हैं। अगर ये सब हैं तो वैराग्य नहीं है। सुख और दुख, मान और अपमान, राग और द्वेष, इन भावनाओं

को लेकर मन का द्वंद्व ग्रसित रहना कल्पना है। अगर ये सब हैं तो वैराग्य नहीं है। आशा मिट जाय, जो प्राप्त है उसमें संतुष्ट रहे और जो प्राप्त नहीं है, उसके लिए आकर्षण नहीं। अनुकूल से अनुकूल लोगों में कोई खिंचाव नहीं। किसी से वैर-विरोध नहीं। किसी की बुराई न करे। गोस्वामीजी कहते हैं—

तन करि मन करि वचन करि, काहू दूषत नाहिं।

तुलसी ऐसे संत जन, रामरूप जग माहिं ॥ वैराग्य संदीपनी ॥

अपने शरीर से, मन से, वाणी से किसी को दोष नहीं लगाते हैं, वे संतजन जगत में रामरूप हैं।

सोई अखण्ड समाधि है, जहाँ अखण्ड वैराग।

सोई संत सोइ साधु है, सोई सिद्ध बड़ भाग ॥ 7 ॥

अखण्ड समाधि कहां है? जहां अखण्ड वैराग्य है। सब कुछ के प्रति अनासक्त भाव होना सच्ची समाधि है। इसमें मन अचल हो जाता है, विश्राम पा जाता है। साधक को पूर्ण वैराग्य हो इस पर ध्यान देना चाहिए। ऐसा अध्ययन, मनन, चिंतन रात-दिन करे। आत्मचिंतन में इस ढंग से डूबे कि अखण्ड वैराग्य उदय हो। किसी चीज के लिए कामना न हो। स्त्री-पुत्र, परिवार कोई छोड़ सकता है। घर-द्वार, माता-पिता छोड़ सकता है, लेकिन देह साथ में रहती है। देह का गुजर साथ है। देह को लेकर आदमी पचता है। गुजर-बसर को लेकर भी न पचे। जो कुछ मिल जाये रूखा-सूखा पेट में डाल ले तो उससे जो ऊर्जा मिलेगी बहुत पुष्टि देगी। किसी चीज की कल्पना न हो। अखण्ड वैराग्य जहां है, वहां अखण्ड समाधि है। जिसके जीवन में अखण्ड वैराग्य है, वही संत है, वही साधु है, वही सिद्ध है, वही सौभाग्यशाली है। अगर अनंत सुख चाहो, दुख नाम की चीज न चाहो, तो अखण्ड वैराग्यवान बनो।

बिन वैराग्य न मुक्ति है, बिन वैराग्य न ज्ञान।

बिन वैराग्य न भक्ति है, बिन वैराग्य न शान ॥ 8 ॥

बिना वैराग्य के मुक्ति नहीं होगी। बिना वैराग्य के ज्ञान बेकार है। बिना

वैराग्य के भक्ति कैसे होगी? और बिना वैराग्य के नाश होना है, पतन होना है।

वैराग्य ढीला होता है, तब साधक पर दोष-दर्शन करने लगता है। यह गलत है, वह गलत है, गुरु में दोष-दर्शन, साधु में दोष-दर्शन, समाज में दोष-दर्शन, नियमों में दोष-दर्शन, हर बात में दोष-दर्शन शुरू हो जाता है। जिन-जिन लोगों के मन में वैराग्य घटा है, वे परदोष-दर्शन शुरू किये हैं और धीरे-धीरे पतन की तरफ गये हैं और अंततः पतित हो गये हैं। जिसके मन में वैराग्य होगा, वह परदोष-दर्शन कैसे करेगा? अपने दोष निकालो। सबसे गुण-ग्रहण करो और अपना कल्याण करो।

ताते मुख्य प्रधान है, सबको यह वैराग।

गुरु कृपा जापर भई, ते पावत बड़ भाग ॥ 9 ॥

अतएव दुखों से सर्वथा छूटने के लिए सबके लिए अखण्ड वैराग्य ही मुख्य साधन है। वे वैराग्यवान परम सौभाग्यशाली हैं, जिनको वैराग्यवान सद्गुरु का साहचर्य और उपदेश रूप कृपा प्राप्त है। वे पूर्ण स्थिति पाते हैं।

हर व्यक्ति को वैराग्यवान होना चाहिए। क्या गृहस्थ के लिए भी वैराग्य जरूरी है? तो क्या गृहस्थ सुख नहीं चाहते? उनको भी वैराग्य जरूरी है। जो जितना अनासक्त होगा, वह उतना बादशाह होगा। बादशाहत सबको सुखद है। सांसारिक बादशाहत तो पीड़ाप्रद है। लेकिन जो वैराग्य से पूर्ण बादशाह हो तो क्या पूछना। महासुख है। अगर बादशाह होना चाहो तो अखण्ड वैराग्यवान होओ।

गुरु कृपा जापर भई, ते पावत बड़ भाग। साहेब कहते हैं—गुरु की कृपा जिन पर होती है, वे सौभाग्यशाली हैं। वे वैराग्य पाते हैं। गुरु की कृपा तो सब पर है ही, अपनी कृपा होनी चाहिए। यह सच है कि पात्रत्व होते हुए भी सहायक न हो तो उसका विकास नहीं हो सकता। सच्चे वैराग्यवान सद्गुरु-संत न मिलें, तो अपना वैराग्य का अंकुर झुलस जायेगा। वह ठंडा हो जायेगा। इसलिए सच्चे सद्गुरु की जरूरत है। वैराग्यवान हो, उनके पास अपना मन समर्पित हो तो निश्चित ही वैराग्य

दृढ़ होगा।

तिनको चरणोदक सही, तिनको महाप्रसाद।

तिनको दर्शन नित्य सही, जिनकी मिटी उपाधि॥ 10 ॥

चरणोदक, महाप्रसाद और दर्शन उन्हीं के उचित हैं जिनकी उपाधि मिट गयी हो। हिन्दू समाज में जितने संप्रदाय हैं, उनमें चरणोदक चलता है। गुरु के चरण के अंगूठे में पानी का स्पर्श करके ले लिया जाता है, उसको चरणोदक कहते हैं। चरण + उदक = पैर का पानी। तिनको महाप्रसाद उनके खाने के बाद जो जूठन हो उसमें से कुछ लेना महाप्रसाद है। दर्शन-देखना। चरणोदक, महाप्रसाद यह रस्म है, जो चलता है। पहले ये रस्म बहुत था; अब घटा है। वास्तव में गुरु की आज्ञा मानना, उपदेश मानना, उसका आचरण करना सबसे बड़ी चीज है। दर्शन-साहचर्य यह तो अमोघ है, लेकिन यह सब उन्हीं के होने चाहिए, जिनकी उपाधि मिट गयी है। जिनके मन से पीड़ा विदा हो गयी है, उन्हीं के दर्शन, उन्हीं के चरणोदक, उन्हीं के महाप्रसाद उपयुक्त हैं।

तिनको बंदत हैं सबै, सुर नर मुनि औ भूप।

जिनके दृढ़ वैराग्य उर, मिटा राग तम कूप॥ 11 ॥

जिनके हृदय में दृढ़ वैराग्य है और राग का अंधकार हृदय से मिट गया है, उन्हीं को देवता, मनुष्य, मुनि, राजा सब आदर देते हैं। उन्हीं की वंदना करते हैं।

सनकादिक शुक भरत जड़, कपिलदेव सो जान।

और विदेही रघुगण कहैं, ऋषभदेव परमान॥ 12 ॥

कडू कर्दम विदुर जी, ये वैराग्य निधान।

अष्टावक्र पुनीत मुनि, किये शास्त्र परवान॥ 13 ॥

साह शिकन्दर बलख के, और भरथरी भूप।

गोपीचन्द्र गोरखन में, सब वैराग्य स्वरूप॥ 14 ॥



श्री पूरण साहेब उदारतापूर्वक कुछ वैराग्यवान संतों के नाम गिनाते हैं। इसका मतलब यह नहीं है कि ये ही वैराग्यवान हुए हैं और नहीं हुए हैं। बड़े-बड़े वैराग्यवान हुए हैं, उनके नाम छूट गये। कहां तक नाम गिनाया जाय? इसका लक्षणा अर्थ यह है कि सभी वैराग्यवान पूजनीय हैं। चाहे वे जिस देश के हों, किसी मत-पंथ के हों, किसी काल के हों। जितने वैराग्यवान हैं सब पूजनीय हैं।

सनक, सनन्दन, सनातन, सनतकुमार ये चार महा वैराग्यवान पुरुष हुए हैं। शुकदेव स्वामी महा वैराग्यवान हुए। इनके लिए कहा जाता है, जब ये माता के गर्भ से निकले तो नार-बेवार सहित भाग निकले जंगल को। सोलह वर्ष तक तो गर्भ में ही रहे। मानो, गर्भ में बड़ा सुख था। फिर निकले और नार-बेवार सहित जंगल को भाग खड़े हुए। लेकिन भागवत में ऐसी बात नहीं है। किन्तु वे जब यज्ञोपवीत के योग्य हुए और यज्ञोपवीत भी नहीं हुआ था तभी भाग निकले। वेदव्यास पुकारते-पुकारते पीछे-पीछे गये, परंतु वे कुछ न सुने, तो मानो जंगल ने ही उनको उत्तर दिया कि ऐसे वैराग्यवान के पीछे मत पड़ो। शुकदेव स्वामी महान वैराग्यवान हुए।

भरत राजा थे। वे वैराग्यवान हुए थे। लेकिन वे एक हिरनी के बच्चे में मोह कर लिए थे। तब फिर से उनको जन्म लेना पड़ा और हिरन होना पड़ा। पूर्वजन्म की बातें उन्हें याद थीं, इसलिए बड़ा दुखी रहते थे। वे हिरन की योनि में भी बहुत दुखी रहते थे और अपने दोषों से ग्लानि करते थे। उसके पश्चात एक ब्राह्मण के घर में जन्मे और उनको पूर्वजन्म की याद थी। इसलिए वे निश्चय कर रखे थे कि अब मोह कहीं और कभी नहीं करना है। माता-पिता यज्ञोपवीत कराना चाहे, उस पर भी वे ध्यान नहीं दिये। यज्ञोपवीत कर दिये, तो पर भी वे यज्ञोपवीत की कोई मर्यादा नहीं रखते थे। स्नान-दातौन तक न करते। कुछ भी नहीं करते। कोई खिला दे तो खा लें। किसी से नहीं बोलते कि बोलने से मोह होता है। बोलने से मोह होने पर बड़ी झंझट होगी। उनका जड़ भरत नाम पड़ा। क्योंकि जड़, मतलब जड़-मूढ़, बोलना न डोलना। इस प्रकार वे वैराग्यवान हुए। इसमें अतिशयोक्तियां हैं। उपदेश के लिए कहानी गढ़ी गयी कि हिरण में मोह किये थे इसलिए भरत फिर से जन्मे थे। तुम यदि कहीं चेला-चाटी में मोह कर लोगे तो तुम्हारी क्या दशा होगी।

कपिल देव महान पुरुष हुए हैं। सांख्य दर्शन के आचार्य कपिल थे। कपिल एक ऐसा समर्थ नाम है जो भारतीय परंपरा में यथार्थ ज्ञान और वैराग्य का मूर्तिमान स्वरूप है। उपनिषद् में भी कपिल की महिमा है। कपिल की परंपरा में बुद्ध ने शिक्षा पायी थी। कपिल से प्रभावित महावीर भी थे और कपिल का तत्त्वज्ञान जिसमें पुरुष और प्रकृति मिलाकर सब पच्चीस हैं, उसका वर्णन बारम्बार पुराणों में आता है। कपिल बहुत समर्थवान पुरुष हुए हैं। वे प्रज्ञावान, वैराग्यवान, बोधवान, सत्यद्रष्टा थे।

विदेही जनक को कहते हैं। रघुगण, कद्रू, कर्दम, विदुर, अष्टावक्र, बलख के शाह सिकन्दर, भर्तृहरि और गोपीचन्द तथा गोरखनाथ स्वयं और उनकी परम्परा में बहुत से योगी हुए जो वैराग्यवान पुरुष हुए हैं। किसी के मन की पीड़ा तभी मिटेगी, जब उत्तम वैराग्य उदय होगा, सब तरफ से अनासक्ति, सारे विषयों से घृणा होगी। अंत में जीव के साथ कुछ भी रहने वाला नहीं है। इसलिए सबसे वैराग्य, कहीं राग नहीं, कहीं मोह नहीं।

( कबीर मंदिर, प्रीतमनगर, इलाहाबाद

27 अक्तूबर, 1995 ई० )

## ग्यारहवां प्रवचन

विद्या को भय बाद को, तप को क्षय भय होय ।  
द्रव्य को नृप चोर भय, समुद्र सयाने लोय ॥ 15 ॥  
सकल भोग को रोग भय, काया को भय काल ।  
सकल साधना इन्द्रिन भय, ताते होत बेहाल ॥ 16 ॥  
तरुणी को भय तरुणता, योगिन को भय नारि ।  
स्वर्गिन को भय अवधि को, हृदया देखु विचारि ॥ 17 ॥  
मंत्रन को भय यंत्र को, यन्त्रन को भय तन्त्र ।  
तन्त्रन को भय सिद्ध को, ताते नाहिं स्वतन्त्र ॥ 18 ॥  
सिद्धन को भय माया, माया को भय ज्ञान ।  
भयमान सकल सम्पत्ति अहै, ताते त्यागहु जान ॥ 19 ॥  
सज्जन को भय दुर्जन, मित्रन को भय हान ।  
मिलन को भय बिछुरन, आवन को भय जान ॥ 20 ॥  
पंडित को भय निन्दा, मूरख को भय मार ।  
रण में भय अति शत्रु को, कुल में भय अति नार ॥ 21 ॥  
कर्म अकर्महि पुण्य अघ, इष्ट अनिष्टहि जान ।  
उपासना विक्षेप भय, ज्ञान को भय अज्ञान ॥ 22 ॥  
चतुरन को भय मूरख, सत्यवादिन पाखण्ड ।  
दुखरूप सकल सुख जगत को, तैसहि सुख ब्रह्माण्ड ॥ 23 ॥

सद्गुरु श्री पूरण साहेब ने इन अनेक साखियों में यह बताया है कि संसार भय से भरा है। विद्वान जो हो जाते हैं, उनको वाद-विवाद करने में रुचि हो जाती है। उसमें उन्हें हार जाने का डर हमेशा लगा रहता है। तपस्वी सोचते हैं, हमारे तप का कहीं क्षय न हो जाय। धन बढ़ गया तो

राजा, चोर, अग्नि इत्यादि का डर लगा रहता है। सारे भोगों के पीछे रोग का डर है। जितना भोग उतना रोग। काम-भोग रोगों का घर है ही। जो नित्य का आहार-विहार है, संयम न रखने से उसमें भी रोग हो जाते हैं। बहुत कम खाने से भी रोग होता है। लेकिन बहुत कम खाने वाला करोड़ों में एक होता है। तपस्वी तो है, लेकिन व्यावहारिक बोध नहीं है। शरीर-स्वास्थ्य की समझ नहीं है, और वे ऐसा कड़ा त्याग कर दिये कि अत्यन्त न्यून भोजन लेने लगे। दिन-दिन भर कुछ नहीं लेते हैं। दो-दो दिन में थोड़ा भोजन लेते हैं। तो वे रोगी हो जायेंगे, यह पक्का है। अधिक खाकर संसार के सर्वाधिक लोग रोगी होते हैं। आहार के विषय में तो इतना है कि जो सहज स्वच्छ सुपाच्य मिले उसे संतुलित रूप से ले तो पेट की कोई शिकायत न होगी। बीमारी दूर रहेगी, तन-मन स्वस्थ रहेंगे। हम मानते हैं कि संयम करने पर भी प्रारब्धिक रोग होता है। लेकिन वह विरल है, जो रात-दिन दुख भोगते हैं, वे अधिक खाते हैं। उनको पता नहीं रहता, ख्याल नहीं रहता और अधिक खा लेते हैं। जो मिले उसको भूख लगने पर चबाकर खाया जाये और कम खाया जाये, बस! इतने में सारी प्रोटीन और विटामिन्स मिल जायेगी। भोग में रोग का भय है। कामभोग इत्यादि आदमी छोड़ भी सकता है। लेकिन रोज-रोज जो खाने का भोग है, यह छोड़ा नहीं जा सकता है। और इसी में आदमी परास्त होता है। बिना विवेक के खा-खाकर रोगी बनते हैं।

**काया को भय काल।** शरीर के पीछे काल का डर है। सारी साधनाओं में इंद्रियों का डर है कि ये गिरा न दें। तरुणी स्त्री को अपनी जवानी का डर है कि कहीं ऊंचे-नीचे पैर न पड़ जायें। त्यागियों को स्त्रियों का डर है कि स्त्री-संगत से पतन न हो जाय। जितने साधक पतित होते हैं वे संग दोष से। संग दोष से हट कर रहें तो पतन होने का कोई चांस नहीं होगा।

**स्वर्गिन को भय अवधि को।** स्वर्ग प्राप्त करने वालों को अवधि का डर है। कल्पना है कि कहीं ऊपर आकाश में स्वर्ग है। भारतीय स्वर्ग की कल्पना ऐसी है कि कुछ समय स्वर्ग में रहकर फिर लौट आना है। यह हिन्दुओं के स्वर्ग की बात है। किन्तु सामी परंपरा (इस्लामी, यहूदी, ईसाई) का स्वर्ग ऐसा नहीं है। वहां एक बार स्वर्ग में गया तो हमेशा के

लिए गया और नरक में गया तो सदा के लिए नरक गया। ये सब काल्पनिक हैं।

मंत्र, यंत्र, तंत्र इनमें एक को दूसरे का भय है। मंत्र शब्दमय है। तंत्र—टोना-टोटका जैसा है। यंत्र कोष्टक इत्यादि है। कितने कोष्टक बनाकर उसमें कितने देवताओं का वास बताते हैं। इसमें भी एक से बढ़कर एक होते हैं। इनको करने वाले भी एक दूसरे से डरते हैं।

बहुत दिनों की बात है। मैं छत्तीसगढ़ में था। एक बैगा था। वह निमंत्रित था। भोजन करने आया। वह देखने में भी बैगा लगता था। वैसी उसकी वेष-भूषा थी। लोगों ने कहा, यह बैगा है। तो मैंने थोड़ा डपटकर कहा—बताओ, तुम क्या जानते हो? उसने घबड़ाकर कहा—कुछ नहीं जानन महाराज, कुछ नहीं जानन ! वह शायद मुझे बड़ा बैगा समझा हो कि ये हमें कुछ कर न दें !

इनमें भी एक-दूसरे का डर लगा रहता है। जो सिद्ध लोग हैं, उन्हें माया का डर है। मायावी जीव को ज्ञान का डर है। संसार की सारी चीजें भयपूर्ण हैं। सज्जनों को दुर्जन दुख देते हैं। लोगों को मित्र-हानि का डर है। मित्रता है और मित्रता कहीं छूट न जाये। मिलने का भय बिछुड़ना है। आने का भय जाना है। पंडितों की निंदा करने वाले लोग रहते हैं। मूर्ख को मार का भय लगा रहता है। रण में दुश्मन का भय है। कुल-परंपरा के पतन में स्त्री का भय है। स्त्री का कदम कहीं नीचे हो जाये तो हमारी इज्जत खराब हो जाये। कर्म में अकर्म का डर है। कर्म करते-करते अकर्म, गलत कर्म न हो जाये। पुण्य-कर्म के पीछे पाप-कर्म का डर है। इष्ट में अनिष्ट का डर है। इष्ट नाम हित, अनिष्ट नाम अहित। उपासना में विक्षेप का डर है। उपासना में चंचलता न आ जाये। ज्ञान को भय अज्ञान। ज्ञान में अज्ञान का भय लगा रहता है।

चतुर लोगों को मूर्ख लोग पीड़ित करते हैं। सत्यवादी को पाखण्ड का डर है। संसार में सब दुख रूप है। कहीं भी विश्राम नहीं है। दुनिया की चीजों में रमोगे तो भय के अलावा और कुछ नहीं मिलेगा। इनमें कुछ ऐसी भी बातें आई हैं; जैसे ज्ञान को अज्ञान का डर है। सत्य में पाखण्ड का डर है, तो क्या ज्ञान छोड़ दें, सत्य छोड़ दें। छोड़ने की बात नहीं है। बात तो यह है कि इस शरीर में रहकर शुभ-मार्ग में चलते हुए भी बराबर डर बना

रहता है। कुछ डर की जरूरत है भी। सब डर बेकार नहीं है। जैसे अपने से बड़ों का डर बहुत जरूरी है। इससे बहुत गलत काम नहीं होते हैं। अपनी इंद्रियों का डर कि हम कहीं गलत न कर जायें। मन का डर कि मन हमें भटका न दे।

*डर करनी डर परम गुरु, डर पारस डर सार।*

*डरत रहे सो उबरै, गाफिल खाई मार ॥ कबीर साखी ॥*

इसलिए इस डर की जरूरत है। अब दूसरा डर कि एकदम अविवेकी बन जाये कि मैं कुछ नहीं कर सकता हूं, मेरा कल्याण ही नहीं होगा और साहसहीन हो जाये, यह गलत है। लेकिन मन-वासनाओं का डर अपने कल्याण के लिए जरूरी है और उपासना के लिए, संरक्षण के लिए, अपने से बड़ों का डर जरूरी है। डर, अदब, लिहाज से काम चलता है। निरानिर ज्ञान की दशा में हर इंसान हर समय ठहरा नहीं रह सकता है। परिपक्व होने में समय लगता है। परिपक्व होने पर भी डर, अदब, लिहाज की जरूरत होती है। परिपक्व हो जाने पर भी जब तक जीवन है, डर की जरूरत है। अजहूँ नाव समुद्र में, न जाने क्या होय। इसलिए डरना तो जीवन भर है। डरत रहे सो उबरै, गाफिल खाई मार। गाफिल होगा, असावधान होगा, वह मार खायेगा।

जो लोग कहते हैं, हमें गुरु की जरूरत नहीं! हमें तो सब ऐसे ही ज्ञान हो जाता है। ऐसा पढ़े-लिखे लोग प्रायः कहते हैं—महाराज! गुरु न करें, तो काम नहीं चलेगा। अरे, तुम गुरु न करते तो बोल भी न पाते। जो कुछ बोल रहे हो, वह किसी गुरु ने सिखाया है। समाजशास्त्री बताते हैं कि कोई बच्चा ऐसी जगह पैदा करो, जहां सूनसान हो, और फिर मां उससे बात न करे, कुछ बोले न। उसकी सेवा कर दे, और कोई बोलने वाला न हो, बच्चे के पास। वह बड़ा हो, जवान हो जाय, तो वह बोल नहीं पायेगा। जो कुछ हम बोल रहे हैं, सीख से। भाषा का ज्ञान हमें हुआ है, वह शास्त्रों, पुस्तकों को पढ़ने से हुआ है। शास्त्रों को संतों से गुरुजनों से सुने तब ज्ञान हुआ है। शास्त्रों को पढ़े हैं तब ज्ञान हुआ। परंपरा से हमें ज्ञान मिला है, तब हम बोल रहे हैं, कह रहे हैं। नहीं तो कुछ भी ज्ञान न होता। अदृश्य रूप में न मालूम कितना ज्ञान हमें चारों तरफ से मिलता रहता है। लेकिन कुछ घमंडी लोग होते हैं जो समझते हैं कि गुरु की कोई जरूरत

नहीं है। गुरु की आवश्यकता है। एक गुरु ऐसा होता है जो विशेष होता है, जिसकी छत्रछाया में साधक कल्याण करता है। लेकिन और भी अनेकों गुरुओं, व्यक्तियों द्वारा ज्ञान मिलता है। इसलिए मानो पूरी सृष्टि ही हमारा गुरु है।

बसबो भलो एकांत को, छाड़ि सकल की आश।  
जित अविवेकी नर सकल, कोई न आवै पास॥ 24॥  
भल बसबो आरण्य को, शरद निशा को चन्द।  
शीतल जल सरितान को, फल भक्षण स्वच्छन्द॥ 25॥

सबकी आशा त्यागकर एकांत में रहना अच्छा है। जहां अविवेकी मनुष्य कोई पास में नहीं आने वाला है। शरद निशा की चांदनी हो, जंगल का वास हो, सरिता का शीतल जल और जंगल का फल पी-खा लें और स्वच्छन्द रहें।

ये कथन आकर्षक लगते हैं। जंगल तो मिल जाता है लेकिन फल मिलना मुश्किल है। जंगल में कितना प्रघटनन हुआ है। आजकल तो जंगल में फल मिलना ही दुर्लभ है।

दोष दृष्टि जबहीं भई, तब उपजो वैराग।  
दृढ़ निर्वेद जाको भयो, सोइ मुमुक्षु बड़ भाग॥ 26॥

जिसको विषयों में दोष-दृष्टि उत्पन्न होती है, उसके चित्त में वैराग्य उत्पन्न होता है। सब चीजों की नश्वरता जिसकी दृष्टि में हमेशा झलकती रहती है, उसके मन में कहीं मोह नहीं बनता। **दृढ़ निर्वेद जाको भयो, सोई मुमुक्षु बड़ भाग।** जिसके चित्त में दृढ़ निर्वेद हुआ। निर्वेद मतलब ग्लानि, दृढ़ वेदना, गहराई से सोचना, चिंतन करना। गहराई से सोचो शरीर-संसार को। जैसे, यह टेबल है। ऊपरी दृष्टि से टेबल है। थोड़ा विचार करें, तो लकड़ी है। थोड़ा और विचार करें तो मिट्टी है। थोड़ा और विचार करें, तो कणों का प्रवाह मात्र है। रासायनिक दृष्टि से अगर हम पदार्थों को देख पायें तो कोहरे के समान सारी चीजें नाचती हुई दिखाई देंगी। जो जितना विचारवान होगा, उतना उसके मन का मोह मिटता

जायेगा। वही मुमुक्षु बड़ा सौभाग्यशाली है जिसके चित्त में दृढ़ निर्वेद होता है। विषयों से अत्यन्त ग्लानि होती है। दृश्य अचानक जाने वाला है। और ऐसा जायेगा कि कुछ पता नहीं चलेगा कि कहां गया।

जो आदि में न हो, अंत में न हो, वह वर्तमान में होते हुए भी मानो नहीं है। शरीर पहले नहीं था, आगे नहीं रहेगा, तो वर्तमान में रहते हुए भी मानो नहीं है। जो कुछ भी हमारा अपना माना हुआ है, सब आदि में नहीं था और अंत में भी नहीं रहेगा तो वर्तमान में भी मानो नहीं है। ऐसा मानकर निर्मोह होओ। शरीर निश्चित है पहले नहीं था, और आगे नहीं रहेगा।

अन्त दशा ले आदि में, सोई साँच वैराग।

सो सुखिया तिहुँ लोक में, जाको निश्चय त्याग ॥ 27 ॥

अपने माने हुए शरीर की मृत्यु आज ही देख लेना सच्चा वैराग्य है। वह मनुष्य पूरे संसार में सुखी है जिसके मन में सबकुछ के त्याग का निश्चय है।

अंतिम दशा को आदि में लो। शरीर की मृत्यु की दशा को अभी देखो। हमें यह सोचना चाहिए कि हमारा शरीर मर गया है। इसको गंगा के किनारे गाड़ दिया गया है, समाधि लगा दी गयी है। ऊपर से मिट्टी डाल दी गयी है और मिट्टी का धूह बना दिया गया। कुछ मिट्टी इधर-उधर बिखरी है। कुछ चीजें भी ऐसी हैं जो इधर-उधर पड़ी हैं। लोग वहां से लौट आये हैं। इस सत्य को देखो, आजकल में यह होना ही है। शरीर के अंत को देखने से कोई संताप नहीं होता, कोई दुख नहीं रहता। मेरे बाद क्या होगा? ऐसा सोचना महा मूर्खता है। संसार अनादिकाल से है, और सब समय होता रहता है और सब समय होता रहेगा। संसार का स्वभाव ही है होना। तुम अपने होने को देखो। तुम अपनी सत्ता-महत्ता को समझो। अपना घर समझो कि तुम्हारा घर कहां है?

साहेब साहेब सब कहैं, मोहिं अँदशा और।

साहेब से परिचय नहीं, बैठोगे केहि ठौर ॥ बीजक, साखी 181 ॥

सभी लोग साहेब, स्वामी, परमात्मा, राम, मोक्ष कहते हैं, लेकिन उनका परिचय नहीं है तब कहां बैठोगे?



साहेब, स्वामी, परमात्मा ऊपर नहीं है। यह आत्मा ही साहेब है। यह जीव ही साहेब है। अपने स्वरूप में स्थित होना ही सत्य-धाम में स्थित होना है। कितने लोग वैराग्यवान हैं, लेकिन स्वरूप का ज्ञान नहीं है। तो उनका भी भटकाव है। कितने लोगों को स्वरूप का ज्ञान है, लेकिन वैराग्य नहीं है तो भी काम पूरा नहीं है। ज्ञान हो, वैराग्य हो और वासना को छोड़कर स्वरूप में स्थित हो तब काम पूरा होगा। श्री पूरण साहेब ने एक ही साखी में कितना सुन्दर कहा है—

जाते सकलो परखिया, सो पारख निजरूप।  
तहाँ होय रहु स्थीर तू, नहिं झाँई भ्रमकूप॥

जिसने सबको परखा वह पारख निजरूप ही है। जिसने सबको परखा वह कौन है? अपना आपा। इसलिए तहाँ होय रहु स्थीर तू। वहीं तुम स्थिर रहो। नहिं झाँई भ्रम कूप। परिछाई, प्रतिबिम्ब में मत जाओ। वासना, भास, अध्यास में मत जाओ। जितना भी स्वरूप के अतिरिक्त है, सब भास है, आभास है, अध्यास है, परिछाई है, प्रतिबिम्ब है, झाँई है, उसमें न जाओ। जिसने अंतिम दशा को आदि में ही देख लिया, वह परमसुखी हो जाता है। शरीर के मरण की दशा को हमेशा देखें।

कन्था अरु कौपीनहू, जाको मिलै न कोय।

वृत्ति इन्द्र ते अधिक, तृप्त चलित नहिं होय॥ 28 ॥

अखंड वैराग्यवान को चाहे गुदड़ी और लंगोटी भी समय से न मिले, परंतु उसकी वृत्ति इन्द्र से बहुत ऊंची अखंड संतोष है। वह सदैव आत्मतृप्त होता है, कभी कंपित नहीं होता।

इन्द्र का नाम तो केवल उपलक्षण मात्र है। इन्द्र बेचारा क्या है! संत ही सम्राट है। विषय-वासना का त्याग कर देने वाला ही सम्राट है। संत की वृत्ति स्थिर हो जाती है, चलित नहीं होती। शरीर का गुजर तो होगा ही।

अनइच्छा जो मिलत है, भोजन वस्त्र विहार।

सोई लेत हैं सुखित होय, राखत कछु न आधार॥ 29 ॥

वैराग्यवान बिना कुछ इच्छा किये जो सहज मिल जाता है—भोजन, वस्त्र तथा निवास, उसे संतोषपूर्वक ले लेते हैं। वे अपने लिए कुछ आधार

नहीं रखते।

बिना इच्छा के जो कुछ मिल जाये, भोजन ले लेते हैं, वस्त्र ले लेते हैं। 'विहार'—रहना, बसना, घूमना। विहार का मतलब घूमना और विहार का मतलब आश्रम भी होता है। बौद्धों का विहार (आश्रम) होने से भारत का एक प्रदेश बिहार कहलाने लगा। मगध, वैशाली, मिथिला और अंग देश इन सब में बौद्धों के अच्छे-अच्छे मठ थे। इसलिए वह प्रांत बिहार कहलाया।

चीन देश का बौद्ध साधु फाह्यान पांचवीं शताब्दी में भारत आया था। उसने अपनी डायरी में लिखा है कि श्रावस्ती, कुशीनारा, बोधगया ये सब केवल बियांबां हैं। सब भग्नावशेष हैं। उस समय बुद्ध को हुए 1000 (हजार) वर्ष हुए थे। तभी से, आज से सोलह सौ वर्ष पूर्व वे भग्नावशेष बताते हैं। उजड़े तो उसके भी पहले से थे। पटना में अशोक का भवन उसने देखा। पटना को पाटलीपुत्र कहते थे। उससे वह बहुत प्रसन्न हुआ। अशोक के भवन के विषय में लिखा है कि इसे मनुष्य ने नहीं बनाया है, कोई देवता ने बनाया है। यह मनुष्य की रचना नहीं हो सकती है। तो बिहार नाम घूमना, फिर बिहार का अर्थ मठ भी हुआ, और फिर बिहार प्रदेश हो गया। बिहार प्रदेश भारत के केन्द्र में सदा से रहा है। क्रांतिकारी चिंतक भी वहां होते रहे हैं। विवेकवान जो मिल जाये, भोजन ले लिये, वस्त्र ले लिये, निवास ले लिये। वे निश्चित होकर, प्रसन्न होकर प्राप्त वस्तुओं में बरताव करते हैं। वे राखत कछु न अधार। अपने मन में कोई आलम्बन नहीं पकड़ते।

सज्जन ते जाँचे नहीं, दुर्जन ढिग नहिं जाय।

प्रारब्ध वर्तमान जो, बरतै सो बरताय ॥ 30 ॥

वैराग्यवान संत सज्जन से कुछ याचना नहीं करते और दुर्जन के तो पास ही नहीं जाते। प्रारब्धवशात जो कुछ मिल जाता है, उसी में वे निर्वाह कर लेते हैं।

अन्त दशा लिये आदि में, सोई करों बखान।

सुख ब्रह्मा इन्द्रादि को, काक विष्टवत जान ॥ 31 ॥

जिन्होंने अंतिम दशा को आज ही स्वीकार लिया है कि शरीर मानो मिट्टी में मिल गया है। मैं उसी स्थिति का वर्णन करता हूँ। उसकी दृष्टि में ब्रह्मा और इंद्रादि का स्वर्ग-सुख काक-विष्टा के समान है।

ब्रह्मा-इंद्रादि का स्वर्ग-भोग काल्पनिक है। इस संसार में सबसे बड़ा सुख कामभोग को माना है, किन्तु वह क्षणिक, उत्तेजना, गंदगी तथा पछतावा के अलावा क्या है। वैराग्यवान का निर्भय, स्थिर सुख निर्विषय निश्चल शांति है।

देह अन्त मृतुक दशा, सो मैं आजहि लीन्ह।

कफन पहिर समाधि में, जग विस्मृति भड़ चीन्ह ॥ 32 ॥

देह का जो अंत होता है वह मृत्यु दशा होती है, उस भाव में मैं आज ही से लीन हूँ। कफनी पहनकर समाधि में बैठ गया हूँ। जग विस्मृत हो गया है, यही हमारी पहचान है। इन साधुओं को जो अचला-लंगोटी मिलती है, वह कफन और कौपीन है। ध्यान-समाधि में जगत को भूल जाना है। जगत को भूल जाने का मतलब है जगत के मोह को भूल जाना, मोह न रहना। इस शरीर-संसार के प्रति मोह है, उसे काटना चाहिए। यहां जो गृहस्थ बैठे हैं, वे यह न सोचें कि यह केवल साधुओं के लिए है, हम लोगों के लिए नहीं। सबको उसी घाट जाना है। कोई बच नहीं सकता है। कितना ही राग-रंग वाला हो, गंगा के किनारे श्मशान में सबको जाना है। असली बस्ती तो वही है। यह तो नकली बस्ती है। जहां आये, बसे और उजड़े वह तो नकली बस्ती है। असली बस्ती वह है, जहां बस करके कोई कभी न उजड़ा। अतएव श्मशान ही असली बस्ती है। उस बस्ती की तरफ जाने के लिए तैयारी करनी चाहिए। मरते समय भय, चिंता, आकर्षण, दुख न हो, ऐसी तैयारी करनी चाहिए। समय बहुत जल्दी-जल्दी भागा जा रहा है। आदमी सोचता है कि अभी तो बहुत समय है। जब मां के गर्भ से ही शिशुओं का शरीर छूटने लगता है, तब और क्या कहा जाये। क्या उम्मीद की जाय कि यह शरीर कब तक रहेगा!

मृतुक को मरबो कहा, निर्धन तस्कर भीत।

भिक्षुक को अभिमान कहा, त्यागी काको मीत ॥ 33 ॥

अगर आदमी शरीर रहते-रहते समझ ले कि शरीर मरा है, तो उसको मरने का भय कहां होगा? जिसके पास धन ही नहीं है उसे चोर का क्या डर होगा? भिक्षु को अभिमान कहां होगा? और त्यागी मित्रता कहां करेगा? त्यागी का तो पूरा संसार मित्र है। उसके तो जीवमात्र मित्र हैं। लेकिन वह कहीं ममता नहीं करता है। कोई मित्र होता है, कोई नहीं होता है। लेकिन वैराग्यवान का सारा संसार मित्र है, इसलिए उसका कोई व्यक्तिगत मित्र नहीं है। जिसने सबका मोह छोड़ दिया, उसका सब है। और जो कहीं मोह करता है, कहीं नहीं करता है, उसका कोई अपना है और कोई पराया है। वस्तुतः संसार में कोई अपना नहीं है इसलिए सबका मोह छोड़ देने वाले के लिए सारा संसार मित्र है। उसका तो जीव मात्र मित्र है।

( कबीर मंदिर, प्रीतमनगर, इलाहाबाद

28 सितम्बर, 1995 ई० )

## बारहवां प्रवचन

दरिद्रता को सब डरें, करें सम्पत्ति सो प्रीति ।  
सो दरिद्र हम लीन हैं, अब कहा रीत बे प्रीति ॥ 34 ॥  
हम दरिद्र में सुखी हैं, सम्पत्ति सो दुख मान ।  
भोजन भिक्षा अन्न को, औ नदियन जल पान ॥ 35 ॥

वैराग्यवान, वनवासी अपने पास कुछ नहीं रखते हैं। वे कहते हैं कि लोग दरिद्रता से डरते हैं और संपत्ति से प्रेम करते हैं। लेकिन हम तो दरिद्रता में ही लीन हैं। अब प्रेम की रीत कहां है? कहीं मोहब्बत करने का कहां चांस है? जब कुछ भी चीज और व्यक्ति हमारे नहीं हैं तो लगाव कहां करें? इसलिए हम दरिद्रता में सुखी हैं। सम्पत्ति को दुख रूप मानते हैं। भिक्षा का अन्न खा लेते हैं, और नदियों का जल पी लेते हैं। इतना ही नहीं—

राह बाट की चींधरी, जोरि गूदरी कीन्ह ।  
गही तूमरी हाथ में, शयन भूमि पर कीन्ह ॥ 36 ॥

तन ढकने के लिए राह-बाट में पड़ी चींधरी जोड़कर गुदड़ी बना ली, हाथ में तुमड़ी ले ली पानी के लिए और शयन करने के लिए जमीन तो बहुत विशाल पलंग है ही। जहां मन हुआ सो गये।

काह बन बाग आरण्य कहा, काह मन्दिर श्मशान ।  
अचिन्त निद्रा करत हौं, हर्ष शोक नहिं मान ॥ 37 ॥

वन हो, बाग हो या विशाल जंगल हो, उत्तम भवन हो या श्मशान हो, कोई फर्क नहीं पड़ता। प्रारब्ध चाहे जहां ले जाय। अचिंत निद्रा करत

हों, हर्ष शोक नहीं मान। निश्चित होकर नींद में चला जाता हूँ। न मन में हर्ष है, न शोक है, न मान है।

संसार के पदार्थों में रागवान होने से आदमी हर्ष और शोक में फूलता-पचकता है। राग जितना कटता है, उतने हर्ष-शोक घटते हैं। मोह यदि हो तो आदमी लंगोटी का ही मोह करके चिंता-फिक्र कर सकता है। मोह न हो तो मंदिर और संपत्ति मिट्टी ही तो हैं। इसलिए गहरी शांति के लिए मन को मोह तथा हर्ष-शोक से ऊपर उठाना चाहिए।

शिला पलंग आरण्य घर, शरद निशा को चन्द।

पंखा करत बयार सब, हम पौढत स्वच्छन्द॥ 38॥

वैराग्यवान कहते हैं, शिला ही पलंग है, जंगल ही घर है और शरद निशा की चांदनी ही दीपक है। सब दिशाओं की हवाएं मानो पंखा कर रही हैं। और हम स्वतंत्र विश्राम करते हैं।

*फ़ानूस बन के जिसकी हिफ़ाजत हवा करे।*

*वो शम्मा क्या बुझे जिसे रोशन खुदा करे॥*

हवाएं ही फ़ानूस बन कर दीपक की हिफ़ाजत करती हैं। जबकि हवाएं दीपक को बुझा देती हैं। लेकिन कहने वाला कहता है मानो हवाएं ही फ़ानूस बन गयी हैं। फ़ानूस कांच का घेरा। वो शम्मा क्या बुझे, जिसे रोशन खुदा करे। शम्मा नाम दीपक, वह दीपक कैसे बुझेगा जिसे खुदा ही रोशन करता है। प्रकाशित करता है, खुदा कोई व्यक्ति नहीं, कारण-कार्य की व्यवस्था ही खुदा है।

कोई मोह करेगा, दुख पायेगा; निर्मोह रहेगा सुख पायेगा। राग-द्वेष करेगा दुख पायेगा, मन जलेगा। राग-द्वेष नहीं करेगा, मन शीतल रहेगा। कम खायेगा पेट हलका रहेगा; गम खायेगा, मन हलका रहेगा। चित्त में शांति रहेगी। ज्यादा खायेगा पेट खराब होगा, मन खराब होगा। सब तरह से परेशानी होगी। गम नहीं खायेगा तो चित्त उलझेगा, पीड़ा होगी। कारण-कार्य की अपनी व्यवस्था है। यही खुदा है। जो उसके तहत काम करता है, वह सुखी रहता है।

धुनी ध्यान वृत्ति भारजा, केलि करत परबीन।

लज्जा मान बिसारि के, घर घर भिक्षा कीन॥ 39॥

ध्यान ही धूनी है। ठंडी निवारण करने के लिए साधु लोग धूनी लगाते हैं। गांजा पीने वाले वैसे ही धूनी लगाते हैं। आग जलाये रहते हैं और उसमें से आग निकाल-निकाल कर चिलम में डालते हैं, और गांजा फूंकते हैं। साधु लोग धूनी रमाते हैं, आग जलाते हैं। वैराग्यवान कहता है कि ध्यान ही धूनी है। स्वरूपस्थिति की वृत्ति ही भार्या है, पत्नी है। अकेले रहना जीवन में आनंददायी नहीं है। वैदिक साहित्य में भी लिखा है— “एकाकी न रमते।” अकेले में आनंद नहीं आया। इसलिए उन्होंने कहा— “एकोहम् बहुस्याम् प्रजायेय।” एक से मैं बहुत प्रजा के रूप में हो जाऊँ, ऐसा सोचा। अकेले में आनंद नहीं आता है, इसलिए पत्नी चाहिए। कोई लड़की है तो उसको पति चाहिए। किन्तु वैराग्यवान कहते हैं स्वरूपस्थ वृत्ति ही भार्या है। जो स्वरूप में रमने वाली वृत्ति है, वही हमारी पत्नी है। चारों तरफ से मन शांत हो गया। यह शांति वृत्ति ही हमारी पत्नी है। वैराग्यवान उसी में केलि करता है। स्वरूपस्थ वृत्ति में चित्त को समेट लेना ही सबसे बड़ा ऐश्वर्य पाना है। लज्जा मान बिसारि के, घर घर भिक्षा कीन। अब भोजन की जरूरत है। कितना ही ज्ञान-वैराग्य करो बिना रोटी के नहीं चलेगा। भूख लग गयी, तो लज्जा-मान छोड़कर घर-घर में जाकर भीख मांग लेता हूँ और खा लेता हूँ।

विषम वचन सहों जगत के, चहाँ न धन त्रिय भोग।

करत ठठोली लोग खल, मोंको हर्ष न शोग॥ 40॥

संसार के लोगों के विषम वचन सुनकर सह लेता हूँ। कोई कठोर वचन कहता है तो कोई आदर करता है। निर्विकार होकर सबको सह लेता हूँ। चहाँ न धन त्रिय भोग। न धन चाहता हूँ, न स्त्री चाहता हूँ और न भोग चाहता हूँ। करत ठठोली लोग खल, मोंको हर्ष न शोग। दुष्ट लोग मेरी हंसी उड़ाते हैं, लेकिन मुझे हर्ष-शोक नहीं है। शरीर के नाम होते हैं। शरीर मैं नहीं हूँ तो मेरा नाम कहां है? नाम और रूप दोनों मिथ्या हैं। द्रष्टा-दृश्य विवेक परमार्थ का राजपथ है। इस पर चिंतन-मनन वैदिक-काल से होता रहा है। वेदों में बात आयी है—

द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परि षस्वजाते ।

तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्त्यनश्नन्त्यो अभिचाकशीति ॥

(ऋग्वेद 1/164/20)

अर्थात् सुंदर पंख वाले दो पक्षी हैं, जो साथ-साथ रहते हैं और मित्र हैं। ये एक समान वृक्ष पर चिपके बैठे हैं। उनमें से एक वृक्ष के फल के स्वाद को चखता है, परंतु दूसरा नहीं चखता। वह केवल देखता रहता है।

इसका स्पष्टीकरण है कि संसार में दो श्रेणी के जीव हैं, एक रागी और दूसरा विरागी। किंतु वे मूलतः एक समान, सजाति तथा एक ही गुण-धर्म के हैं और एक ही प्रकार के शरीर में रहते हैं। एक शरीर की इंद्रियों के भोगों में रमता है, इसलिए दुखी रहता है और दूसरा विरागी होने से इंद्रिय-भोग में नहीं पड़ता है। वह केवल अभिचाकशीति-द्रष्टा रहता है।

साक्षी और साक्ष्य दो होते हैं। द्रष्टा और दृश्य दो तत्त्व होते हैं। द्रष्टा चेतन है और दृश्य जड़ है। जड़ का साक्षी बनकर जड़-साक्ष्य से अपने आपको निकाल लेना। मूंज में से सींक निकाल लेने के समान जो साधक अपने को शरीर, मन, वाणी से निकाल लेता है और अपने स्वरूप में स्थित हो जाता है, और स्वरूपाकार वृत्ति में निरंतरता हो जाती है, उसे क्या शोक, क्या मोह?

ये मन के मानै सबै, दुष्ट मित्र जग होय ।

मनहीं जहाँ बिलाइया, अरि मित्र नहिं कोय ॥ 41 ॥

मन के मानने से दुष्ट और मित्र होते हैं। मन ही मानता है कि यह बैरी है और यह मित्र है। यह केवल मन की मान्यता है। जो आज प्रेम करने वाले हैं, उनमें से ऐसे भी होते हैं जो द्वेष करने वाले हो जाते हैं। जो एकदम छाया की तरह लगने वाले होते हैं, वे आलोचना और बुराई में लगने वाले भी हो जाते हैं, और जो बुराई करते हैं, वे निकट आ जाते हैं, और मित्र हो जाते हैं। यह संसार का स्वभाव है। जब मन की मान्यता का जाल तोड़ दिया, तब कौन मित्र है और कौन शत्रु है। तब प्राणिमात्र मित्र हो गये।



कोइ बोलै कोइ ठोलै, कोइ डारै सिर धूर।

कोइ स्तुति निन्दा करै, कोइ ज्ञानी कोइ क्रूर॥ 42 ॥

हमें कोई कटु बोलता है, कोई हंसी मजाक उड़ाता है, कोई हमारे सिर पर धूल डालता है। कोई हमारी स्तुति करता है, तो कोई निंदा करता है। कोई हमें कहता है कि बड़ा ज्ञानी है, और कोई कहता है महा क्रूर है। इस प्रकार लोग अपने-अपने मन के अनुसार व्यवहार करते हैं।

मोको काज न काहु से, काह रंक नृप नाथ।

काह इन्द्र अज हरि हर, मैं निज ज्ञान सनाथ॥ 43 ॥

मुझे किसी से प्रयोजन नहीं, जिसने मेरी प्रशंसा कर दी और जिसने मेरी निंदा कर दी, दोनों को धन्यवाद! दोनों से अपना संबंध नहीं है। चाहे राजा हो, चाहे रंक हो, चाहे इन्द्र ही क्यों न हो? और इतना ही नहीं, ब्रह्मा हो, विष्णु हो, शंकर हो, वैराग्यवान के लिए ये सब क्या हैं? जिसकी सारी कामनाएं बुझ गयीं, वह सबसे निष्फिक्र, निस्पृह हो जाता है, और अपने ज्ञान में कृतार्थ हो जाता है।

मैं नहिं जानो जगत से, मोको सुख दुख होय।

काल कर्म ये जड़ सबै, जड़ देवादिक होय॥ 44 ॥

मैं यह नहीं मानता हूं कि जगत से मुझे सुख-दुख होते हैं। काल जड़ है, कर्म जड़ है, देवादि जड़ हैं, तो ये जड़ मुझे सुख-दुख कैसे दे सकते हैं। दुख तो मेरे अज्ञान से होता है, मेरे मोह से होता है। मेरे मन का मोह मिट गया, अज्ञान मिट गया, तब दुख होने का कोई प्रसंग ही नहीं है।

मैं चैतन्य सब जानता, ई अचेत जड़ रूप।

ई क्या सुख दुख देत हैं, कहते अज्ञ स्वरूप॥ 45 ॥

मैं चेतन हूं, मैं सब कुछ को जानता हूं और जिनको जानता हूं वह सब जड़ है तो वे हमें सुख-दुख क्या देंगे? जो अज्ञानी हैं वे कहते हैं कि दूसरे से सुख-दुख मिलते हैं।

सुख-दुख की मान्यता मेरे अपने अविवेक का फल है। मेरा विवेक इतना जागृत होना चाहिए कि दुख नाम की कोई चीज ही न हो। आदमी अपनी उद्देश्यपूर्ति के रास्ते में परतंत्र नहीं है, स्वतंत्र है। मनुष्य का वह उद्देश्य नहीं हो सकता है जो दूसरे पर अवलंबित हो। मैं अपने अज्ञान से सुखी-दुखी होता रहता हूँ। उस अज्ञान की निवृत्ति होने पर न सुख है, न दुख है। एकरस सुख है। **सुख दुख से एक परे परमपद, सो पद है सुखदाई।** इसलिए सुख और दुख देने वाला कोई अन्य नहीं है। हमारे मन का मोह ही दुख देता है।

मन मानै कर्म काल ग्रह, मन मानै सब देव।

मन मानै जग चक्र सब, चलै न जानै भेव॥ 46॥

इस मन की मान्यता से कर्मों का जाल फैलता है। मन ही काल की कल्पना कर लेता है कि काल ने हमें दुख दिया और ग्रह आकाश में हैं, वे हमें दुख दे दिये। सारे देवता मन की मान्यता मात्र हैं। सारे देवी-देवता काल्पनिक होते हैं। तुम देवताओं के देवता हो। देवता तो सब जड़ हैं, कोरी कल्पना हैं। **मन मानै जग चक्र सब।** जगत के सारे चक्कर मन की मान्यता के फल हैं। मन मोह छोड़ दे, तो चक्कर कुछ नहीं है। **चलै न जानै भेव।** आदमी रहनी में चलने का भेद तो जानता नहीं है। कहावत है—**नाचना न जाने आँगन टेढ़ा।** एक नचनिया था। वह ठीक से नाच नहीं पा रहा था। तो उसने कहा—आँगन जरा टेढ़ा है, इसलिए नाचते नहीं बन रहा है। अरे! आँगन जितना है, उसी में बढ़िया नाच सकते हो। नाचने का ढंग तो जानो। जो उपलब्ध है उसी में तुम अपना काम कर सकते हो।

रज सत तम गुण मन सकल, मन के सकल चरित्र।

स्वामी सेवक मन सकल, मन मानै अरि मित्र॥ 47॥

रज, सत तथा तम ये तीन गुण मन के होते हैं। मन चंचल होता है, वही रज है, और मन शांत होता है वही सत है। मन जब जड़-मूढ़ होता है, वही तम है। तो यह सब मन ही की तो लीला है। सारा चरित्र मन का है। मन ही स्वामी और सेवक की कल्पना करता है। मन ही दुश्मन और दोस्त मानता है।

मन मानै वर्ण आश्रम, मन मानै सुत दास।

मन मानै त्रिय कुटुम जग, मन मानै दुर पास॥ 48॥

मन ने ही वर्ण और आश्रम की कल्पना की है। मन ही पुत्र और दास मानता है। यह दूर है कि पास है, यह हमारे निकट है कि हमसे दूर है, यह मित्र है, यह शत्रु है, यह सब मन की कल्पना है। मन ही मान लेता है कि यह मेरी पत्नी है, मेरा पति है, मेरा कुटुम्ब है, यह सब मन की कल्पना है।

मन मानै जप योग है, मन मानै तप आश।

जो मन को मानै नहीं, सुखी सो साधु निराश॥ 49॥

जप और योग मन की मान्यता है। तप और तप के फल में स्वर्ग की आशा मन की मान्यता है। जो मन ही को नहीं मानता है, वह साधु सबसे निराश और सुखी होता है।

सारा प्रपंच मन के अंदर है। मन की मान्यता छूट जाने पर सारा रोग खत्म हो जाता है। जीव का संबंध जगत से मन द्वारा होता है। जैसे पुल नदी के दोनों तटों को जोड़ने वाला होता है। पुल को तोड़ दिया जाय, तो दोनों तटों से आने-जाने का संबंध टूट जाता है। इसी प्रकार जीव जगत में इसलिए उलझता है कि मन का मोह है। अगर मन ही को जगत से हटा लिया तो उलझने की कोई गुंजाइश ही नहीं है।

मनहिं रोग अरु भोग है, मनहिं पाप अरु पून्य।

मनहिं क्रिया अरु कर्म मन, मन चेतन अरु शून्य॥ 50॥

मन ही भोगों में उलझता है, इसलिए रोग बनता है। मन ही पाप और पुण्य की कल्पना करता है। पाप कैसे होता है? मन द्वारा! पुण्य कैसे होता है? मन द्वारा! जब वह कामी हुआ, क्रोधी हुआ, भोगी हुआ, तब पाप कर डालता है। जब दयालु हुआ, संयमी हुआ, तब पुण्य करता है, तो मन ही से तो सब कुछ होता है। दया भी मन से और पाप की प्रवृत्ति भी मन से होती है। मनहिं क्रिया अरु कर्म मन। मन से सारी क्रियाएं होती हैं। मन से ही सारे कर्म होते हैं। मन चेतन अरु शून्य। मन ही जब सावधान है,

तब चेतन है, और मन ही जड़मूढ़ हो गया तब शून्य है। आदमी में जब जागृति आ जाती है; तब वह चैतन्य हो जाता है। जागृति नहीं आती है तब शून्य। शून्य का मतलब जड़ता है, मूढ़ता है। आदमी वही होता है समय से जड़मूढ़ हो जाता है और समय से चैतन्य हो जाता है।

एक विद्यार्थी परीक्षा में फेल हो गया था। वह बिस्तर पर पड़ा था और मन ही मन घुट रहा था कि अब नहीं पढ़ूंगा। वह जीवन से एकदम निराश हो गया। उसने देखा कि एक चींटी, एक चावल के कण को लेकर दीवार पर चढ़ती है। बिल कुछ ऊपर है। वह चावल सहित गिर पड़ती है। फिर चढ़ती है, फिर गिरती है। फिर चढ़ती है, फिर गिरती है। पचासों बार ऐसा वह करती है, थकती नहीं है। अंत में वह चावल लेकर बिल में पहुंच जाती है। इसे देखकर छात्र के मन में साहस आया। ऐसा तुच्छ जीव चींटी और पचासों बार श्रम करते-करते चावल लेकर अपने बिल में पहुंच जाती है। मैं मनुष्य हूं, एक बार फेल हुआ तो इतना क्यों घबरा गया? अब वह चैतन्य हो गया। पहले शून्य हो गया था, जड़ हो गया था, अब वह चैतन्य हो गया। तो मन ही जब मूढ़ता प्राप्त कर लेता है, तब शून्य हो जाता है। शून्य होने का मतलब है विवेकहीन हो जाना। और जब आशावान हो जाता है कि निश्चित ही मैं सफल होऊंगा, तब चैतन्य हो जाता है।

निराशा और आशा इसके दो अर्थ होते हैं। जो निराशाग्रस्त है, वह कभी सफल नहीं हो सकता है। मैं कुछ नहीं कर सकता। अपने जीवन में मन को कैसे जीत सकूंगा। व्यापार-बट्टा नहीं रहा, अब मैं कैसे कमा सकूंगा? मेरा भाग्य ही ऐसा है? मुझे तो चारों तरफ से डूब जाना है। इस प्रकार की निराशा इंसान को डुबा देती है।

दूसरे लोग उन्नति करते हैं, तो मैं भी उन्नति कर सकता हूं। दूसरे साधु-संन्यासी मन को जीत लेते हैं, तो मैं भी मन को जीत सकता हूं। मैं भी कृतार्थ हो सकता हूं। मैं निश्चित ही पूर्ण रूप से कृतार्थ होऊंगा। इस प्रकार आशावान व्यक्ति निश्चित है, अपनी दिशा में सफल होता है। दूसरी बात है, दुनिया के भोगों की आशा करना, कामना करना दुख है; और आशा-कामना न करना सुख है। दुनिया से निराश होना सुख है और दुनिया की आशा में पड़े रहना दुख है। शब्द में नहीं पड़ना चाहिए, किन्तु शब्द का अर्थ-भेद समझना चाहिए। सब कुछ क्षणभंगुर है। कुछ भी

हमेशा रहने वाला नहीं है। यह विवेकज्ञान है। लेकिन यह समझ ले कि सब कुछ क्षणभंगुर है। हाय! अब मेरा क्या होगा? मैं दुखित हूँ, पिस जाऊंगा, यह निराशा दुखदायी है। सब कुछ क्षणभंगुर है, सब कुछ नाशवान है, इसलिए मुझे इनकी कोई कामना नहीं करनी है। मैं अपने आप में पूर्ण हूँ, यह निराशा सुखद है। संसार की क्षणभंगुरता को देखना और फिर आशावान होना कि मैं इन सबको त्याग कर अपने आप में ही पूर्ण कृतार्थ हूँ, यह कल्याणकर है।

सो मन मैं मानों नहीं, कहा भोग कहा त्याग।

जो है मन को मानबो, सो प्रपंच वैराग ॥ 51 ॥

ऐसे बंधनदायी मन को मैं नहीं मानता हूँ। अब जीवन में कहां भोग है और कहां त्याग है? जब भोग ही नहीं है तब त्याग का प्रश्न ही समाप्त है। जो मन के मान्यतापूर्वक एवं अहंता-ममतापूर्वक वैराग्य है, यह प्रपंचपूर्ण वैराग्य है।

जिस मन द्वारा प्रपंच चलता है, उस मन को ही मैं नहीं मानता हूँ। उठते-बैठते-चलते-फिरते मन को न माने।

बोध वही जो कि माने नहीं मन का।

ज्ञान वही जो कि गाँसे फिरे मन का ॥ भवयान ॥

मन की बात न माने, हरदम मन को काटता रहे, वह कल्याणार्थी है। उठते-बैठते, चलते-फिरते मन को देखे कि मन क्या सोच रहा है। उसे संयत करे।

यह खाद्य है, यह अखाद्य है, यह पेय है, यह अपेय है, यह ग्राह्य है, यह त्याज्य है, यह कर्तव्य है, यह अकर्तव्य है; यह तो मानना पड़ेगा। भोगों को नहीं मानना है, राग को नहीं मानना है। जो मन को मानना है वही प्रपंच-वैराग्य है। सही वैराग्य क्या है? प्रपंच को न मानना। जीवन के बंधन में न फंसना।

मत्तियन में भय मतन को, यत्तियन में भय नार।

त्यागिन में भय लोभ है, युद्ध समय भय मार ॥ 52 ॥

मत-मतान्तर में मत का भय है। एक मतवादी, दूसरे मत को काटता है। वैरागियों को स्त्रियों का डर है। साधक स्त्रियों से सावधान रहें; और स्त्री साधिका पुरुषों से सावधान रहें। त्यागियों को लोभ का भय है। लोभ बढ़ा तो त्याग गया। जो व्यक्तिगत जीवन के लिए अधिक पैसा बटोरता है, वह साधु वैराग्यवान नहीं हो सकता है। गृहस्थ भी अकेले के लिए बटोरता है तो गलत करता है। सारा धन पूरे परिवार का है। जहां लोभ बढ़ा, वहां वैराग्य समाप्त हुआ। युद्ध समय भय मार युद्ध के समय में मार का भय लगा रहता है, कि शत्रु मार न दे।

जाति पाँति को गृहिन में, भेषन में भय भेष।

जगत सकल दुख रूप है, निर्णय करिके देख ॥ 53 ॥

गृहस्थी में जाति-पाँति का डर है। वह इस जाति का है वह उस जाति का है। तथाकथित हर जाति में ऊँच-नीच की कल्पना है। ब्राह्मण में तो कोई ठिकाना नहीं है, इतने ऊँच-नीच भेद हैं। तीन, तेरह, सवालकम्बी, सरवरिया, धाकर, पंक्तिपावन, पंक्तिदूषित और उसमें भी अद्भुत-अद्भुत भेद! तो जाति-पाँति का भय गृहस्थी में है। भेषों में भेष का डर है। कहां से आते हो? तुम्हारी कौन शाखा है? तुम्हारा आचार्य कौन है, गद्दी कहां है, ऐसा पूछने लग जाते हैं। उसे शांति लेने दीजिए, उसे पानी पूछो, भोजन पूछो, आसन दो, मनुष्य है, साधु है, आया है। कौन शाखा चाहते हो? सारी शाखाएं गुरु द्वारा ही निर्धारित होती हैं। किसी गुरु की शरण में है, किसी गुरु ने रास्ता दिखाया है। उसका सत्कार करो, सहयोग करो। भेषधारियों में भेष का डर लगा है। तुम्हारी शाखा गद्दी है, हमारी मूल गद्दी है। हम बड़े तुम छोटे। जगत सकल दुख रूप है, निर्णय करिके देख। साहेब कहते हैं निर्णय करके देख लो सारा जगत दुख रूप है।

तृष्णा की विशेषता, कहाँ लों करों बखान।

देह मरै इन्द्रिय थकें, तृष्णा न मरै निदान ॥ 54 ॥

मैं तृष्णा की विशेषता कहां तक बताऊँ। देह बुढ़ा जाती है, इन्द्रियां थक जाती हैं, मृत्यु का समय आ जाता है; लेकिन तृष्णा वैसी ही ताजा बनी रहती है।

तृष्णा है कि डाँकिनी, की जीवन को काल।

और और निशदिन चहै, जीवन करत बेहाल॥ 55॥

यह तृष्णा है कि राक्षसी है कि मनुष्यों के लिए काल है। रात-दिन अधिकाधिक चाहती है, और जीवों को परेशान करती है।

तृष्णा अग्नि प्रलय की, तृप्ति न कबहूँ होय।

सुर नर मुनि औ रंक सब, भस्म करत हैं सोय॥ 56॥

तृष्णा प्रलय की आग है, यह कभी तृप्त नहीं होती। देवता, मनुष्य, मुनि, राजा, रंक सबको यह भस्म करती है।

निर्धनिक कछु धन चहै, धनिक चहै विशेष।

विशेषहु विशेष चहै, होवन चहै नरेश॥ 57॥

नरेश चहै इन्द्र पद, इन्द्र चहै रणजीत।

असुर चहै सुरपति बनन, यह तृष्णा की रीति॥ 58॥

जो निर्धन है, वह धन चाहता है, जो धनिक है, वह ज्यादा धन चाहता है। जो विशेष धनी है, वह और विशेष चाहता है, यहां तक कि राजा होना चाहता है। राजा इन्द्र होना चाहता है। इन्द्र रणजीत होना चाहता है, फिर दूसरा इन्द्र होने के लिए सामने न आ जाये। असुर सुरपति होना चाहते हैं। यह तृष्णा की रीत है। विश्राम न पाना तृष्णा है। यह तृष्णा ज्ञान-वैराग्य से ही शीतल होती है और कोई चारा नहीं है। खाने में, पहनने में, बात-बरताव करने में, रुपये-पैसे में, लेन-देन में, संयोग-संबंध में, कहीं तृष्णा वाला न हो। तृष्णा त्यागने वाला ही सुखी होता है।

आशा धन त्रिय पुत्र की, जीवन आशा होय।

आशा स्वर्ग सिद्धि मुक्ति की, आशा बंधन लोय॥ 59॥

धन की आशा, पत्नी की आशा, पुत्र की आशा, जीवन की आशा, स्वर्ग की आशा, सिद्धि की आशा और मुक्ति की भी आशा, सब बंधन है। मुक्ति की आशा पहले तो ठीक है। जो बंधन में है, उसे मुक्ति की आशा

ठीक है। किंतु जो मुक्त हो गया उसे मुक्ति की आशा नहीं रहती। यदि मुक्ति की आशा है तो इसका अर्थ है कि अभी बंधन में है।

विषय थकै इन्द्रिय मरें, आशा मरै न कोय।

देह मरै तेउ अमर है, देह धरावत दोय ॥ 60 ॥

विषयों को ग्रहण करने के लिए तत्पर इन्द्रियां थक जाती हैं और मन थक जाता है। लेकिन मनुष्य के अंदर विषयों की आशा नहीं मरती। देह मरने पर भी आशा अमर रहती है, और यही पुनः देह धराती है। इसलिए मुमुक्षुओं को चाहिए कि आशा के बीज को दग्ध करें।

आशा सोई यम फाँस है, सब जीवन दुखखान।

जीव भरमावै ज्ञान हरै, ताते त्यागहु जान ॥ 61 ॥

आशा ही यमराज की फांसी है, और सभी जीवों के लिए दुखों की खान है। यह जीव को भटकाती है और ज्ञान को क्षीण करती है। इसलिए समझ-बूझ कर आशा का त्याग करना चाहिए।

आशा हमारी दरिद्रता है। हमारे अंदर जो भोगों की आशा है, वही हमारी दरिद्रता है। साधक जितना विवेकवान होता है उसके अंदर की आशाएं क्षीण होती जाती हैं। आशा की कोई जरूरत नहीं है। भूख लगने पर कुछ भोजन मिल जाता है, तन ढकने के लिए कुछ कपड़े मिल जाते हैं; और रहने के लिए जगह मिल जाती है। आदमी को चाहिए कि अपनी श्रेणी के अनुसार परिश्रम करे। आशा-वासना की कोई आवश्यकता नहीं है। निरंतर विचारों से और विवेक से जब मानसिक विकार क्षीण होते हैं, तब अंतःकरण शुद्ध होता है। तब आदमी की वृत्ति निर्मल होती है।

भिद्यते हृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्वसंशयाः।

क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन्दृष्टे परावरे ॥ मुण्डकोपनिषद् 2/2/8 ॥

जब हृदय की गांठें (जड़ासक्ति) कट जाती हैं, और सारे संशयों का नाश हो जाता है; तब उसके कर्म नष्ट हो जाते हैं। कर्म क्षीण हो जाने का मतलब है, निस्पृह हो जाना, आकर्षण रहित हो जाना, खिंचाव खत्म हो



जाना। 'तस्मिन् दृष्टे परावरे' उसकी दृष्टि पर-अवर हो जाती है। पर-अवर का अर्थ है, आर-पार-दिव्य दृष्टि हो जाती है। उसके चित्त में कोई भटकाव नहीं। इस संसार से उसे कुछ पाने की इच्छा नहीं रहती है। यह कूड़ादान संसार हमारे साथ नहीं रहने वाला है। क्षण-क्षण मिटनेवाला है और छूटने वाला है। सदैव के लिए गायब हो जाने वाला है। इसमें क्या आकर्षित हों? जिसकी ऐसी दृष्टि निरंतर बनी रहती है, उसको भटकने का कोई चांस नहीं है।

भोग विषय औ कुटुम सब, अन्त तोहिं तजि जायँ ।

ताते समुझि विचारि के, तुमहि तजो किन भाय ॥ 62 ॥

सारे विषय-भोग और कुटुंबी तुम्हें अन्त में छोड़ देंगे। इसलिए हे भाई! इस तथ्य को समझ-बूझकर तुम ही पहले इनका मोह क्यों नहीं त्याग देते हो?

अंत में तुम्हारे साथ तुम्हारा अपना माना हुआ शरीर भी नहीं रहेगा। इसलिए इस बात को विचारो और पहले से तुम इसका मोह त्याग करो। रूप गोस्वामी ने कितना बढिया कहा है—यदुपति महाराज श्रीकृष्ण के मथुरा का ऐश्वर्य कहां गया? रघुपति महाराज श्रीराम के उत्तर कौशल का ऐश्वर्य कहां गया? इस पर विचार करो और अपने चित्त में निर्णय लो कि तुम्हें क्या करना है। तुम जिसके लिए अहंकार करते हो, वह कुछ रहने वाला नहीं है।

अहो मोह महिमा प्रबल, सबको करत बेहाल ।

ज्ञान हरै सम्पत्ति हरै, प्राण हरै तत्काल ॥ 63 ॥

मोह की महिमा आश्चर्यजनक है। मोह सबको बेहाल करता है। यह ज्ञान को हर लेता है, संपत्ति को हर लेता है और शीघ्र ही प्राण को भी हर लेता है।

मोहवश आदमी स्वजनों को परजन बना लेता है। कल्याण का रास्ता छोड़ देता है। अकल्याण के पथ में भटकने लगता है। गोस्वामी जी ने कहा है—

हित से करे दुराव जो, अनहित से अनुराग।

तुलसी तिनके भाल से, चले भलाई भाग ॥

जब हित से दुराव-छिपाव होने लगता है, और अनहित से अनुराग होने लगता है, तब उसके भाल से भलाई भाग जाती है। जहां से कल्याण हो वहां से परदा और जहां से अकल्याण हो वहां से रुचि, यह अपने विनाश का साधन है। ज्ञान, वैराग्य, विवेक, विचार समझकर भी पतन होने का कारण मोह है।

( कबीर मंदिर, प्रीतमनगर, इलाहाबाद

29 सितम्बर, 1995 ई० )

---

## तेरहवां प्रवचन

जिनकी आशा लागि है, तिनते दुखी न और।

आशा त्यागि निराश भये, सोई सुख की ठौर॥ 64॥

जिनके मन में सांसारिक आशाएं विद्यमान हैं, उनके समान कोई दुखी नहीं है। जो संपूर्ण सांसारिक आशाओं को त्यागकर पूर्ण निष्काम हो गया, वह महा सुख-सागर हो गया। अपने अंदर का अज्ञान सांसारिक विषयों के लिए राग पैदा करता है। जहां अपना माना शरीर भी अपना नहीं है, वहां किस चीज की आशा की जाय। साधक को चाहिए कि सबके साथ हित का बरताव करे। जो प्रेम से बरताव करे उसे धन्यवाद दे। जो प्रेम से बरताव न करे उसको भी धन्यवाद दे। सबके लिए कल्याण की कामना रखे। किसी से कुछ न चाहे। इस प्रकार निष्काम रहना चाहिए। साधक के चित्त में न राग रहता है न द्वेष रहता है। आशा को त्याग कर जो निराश हो जाता है, वह सुख के स्थान में पहुंच जाता है।

आदि मध्य अरु अन्त में, आशा दुख की राश।

स्वर्ग नर्क भुगतावै, आशा अपर्बल फाँस॥ 65॥

शुरू में, मध्य में और अन्त में आशा दुख की राशि है। जब सांसारिक आशाएं चित्त में उदय होती हैं, तब हम बेचैन होते हैं, गुलाम होते हैं और दीन हो जाते हैं। आशा वाली चीजों की प्राप्ति के समय हम मोहवश उसमें आबद्ध हो जाते हैं। उनके छूटने पर हम विकल हो जाते हैं। स्वर्ग-नरक में भटकाने वाली यह आशा ही बंधन है। यह प्रबल फांसी है। साधक को चाहिए कि आशा की फांसी काट दे। कुछ भी न चाहे, निष्काम हो जाय।

ताते आशा त्यागिये, देह गेह की जान।

नास्ति सुख के कारणे, क्योँ होवै बंधमान॥ 66॥

अतएव देह-गेहादि समस्त सांसारिक भोगों की आशा दुखदायी समझकर छोड़ दो। नाशवान क्षणिक सुख के प्रलोभन में पड़कर क्यों बंधन में पड़े? जो सुख अंत में नहीं रहता वह नास्ति है। कबीर साहेब ने ज्ञान-चौंतीसा में 'ज' अक्षर के माध्यम से कहा है—

जजा निग्रह सनेहू, करु निरुवार सन्देहू।  
 नहिं देखे नहिं भाजिया, परम सयानप येहू॥  
 जहाँ न देखि तहाँ आयु भजाऊ, जहाँ नहीं तहाँ तन मन लाऊ।  
 जहाँ नहीं तहाँ सब कुछ जानी, जहाँ है तहाँ ले पहिचानी॥

(बीजक, ज्ञान चौंतीसा)

सद्गुरु कबीर ने यहां संकेत में कहा है जजा निग्रह सनेहू। 'ज' अक्षर कहता है कि मोह का निग्रह करो, त्याग करो। करु निरुवार सन्देहू। तुम्हारे चित्त में जो संदेह है, उसका निरवार करो। नहिं देखे नहिं भाजिया। देख रहे हो जो तुम्हारे साथ चलने वाला नहीं है, उसके पीछे न भागो। परम सयानप येहू। परम सयानी, परम बुद्धिमानी यही है कि जो रहने वाली चीजें नहीं हैं उनके पीछे न दौड़े। जहाँ न देखि तहाँ आपु भजाऊ। जहां देख रहा है, तेरा नहीं है, वहीं भागा जा रहा है। जहाँ नहीं तहाँ मन लाऊ। जहां तेरा कुछ नहीं है वहीं तू अपना तन-मन लगा रहा है। जहाँ नहीं तहाँ सब कुछ जानी। जहां तेरा कुछ नहीं है वहां सर्वस्व समझ लिया है। अंत में साहेब विधेयात्मक बात कहते हैं—जहाँ है तहाँ ले पहिचानी। जहां है वहां पहचान। वह तू खुद है। सबकी कामना छोड़। तू अपने आप से कभी नहीं बिछुड़ सकता। इसलिए अपने आपको समझ और तू अपने चैतन्य तत्त्व में स्थिर हो।

केवल मुक्ति आशा रहै, तेऊ है बंधमान।  
 सुखिया सदा निराश पद, सुनु वैराग्य निधान॥ 67॥

यदि अभी केवल मुक्ति की आशा है, तो भी मन में बंधन है। हे वैराग्य निधान! सुनो, पूर्ण निष्काम दशा ही मुक्ति का साक्षात् स्वरूप है।

केवल मुक्ति की आशा रह गयी है, तब भी बंधन है। पीछे कहा गया है कि पहले मुक्ति की आशा की जरूरत है। कोई भी कथन सापेक्ष होता

है। मुक्ति की आशा करो, भोगों की आशा छोड़ो। मुक्ति की आशा करने वाला ही मुमुक्षु है। मुक्ति की आशा है, मतलब अभी वह मुक्त हुआ नहीं है। तो वह बंधमान है ही। जब मुक्त हो जायेगा, तब मुक्ति की क्या आशा रहेगी? अमुक वस्तु प्राप्त करने की आशा होती है, और जब मिल जाती है, तब उसके विषय में आशा का क्या काम? कुछ भी आशा नहीं। मुक्ति प्राप्त पुरुष को मुक्ति की आशा नहीं रहती है। लेकिन साधक को तो मुक्ति की आशा करनी चाहिए। अंतिम बात साहेब कहते हैं, यदि मुक्ति की आशा अभी है तो मुक्त नहीं हुए हो, बंधन में हो। **सुखिया सदा निराशपद, सुनु वैराग्य निधान।** वैराग्य में निपुण साधक! समझ, निराश पद ही सुखप्रद है। सारी कामनाओं का त्याग ही महा सुख है।

तैत्तिरीय उपनिषद् में निष्काम पद की सर्वोच्चता का बड़ा सुंदर वर्णन है। उसका संक्षिप्त स्वरूप ऐसा है—मानो एक युवक है। वह सज्जन है। वह खूब पढ़ा-लिखा है। आशावान और उत्साहित है। वह शरीर से बलवान है। सारी पृथ्वी का ऐश्वर्य उसी के लिए है। तो यह एक मानुष आनंद है। ऐसा सौ मानुष आनंद एक गंधर्व आनंद है। ऐसा सौ गंधर्व आनंद एक देव आनंद है। ऐसा सौ देव आनंद एक इंद्र आनंद है। ऐसा सौ इंद्र आनंद एक बृहस्पति आनंद है। ऐसा सौ बृहस्पति आनंद एक प्रजापति आनंद है। ऐसा सौ प्रजापति आनंद एक ब्रह्मा का आनंद है। परंतु जो आत्मज्ञानी है और जगत की कामनाओं से शून्य है उसके आनंद के सामने सब फीका है। अतएव निष्काम आत्मलीनता ही परम सुख है।

आशा ते दुख और नहिं, आशा दुख को रूप।

जाकी आशा सब छूटिया, सो सुखिया सुख रूप॥ 68॥

आशा के समान और कोई दुख नहीं है। आशा ही दुख का रूप है। जिसकी सारी आशाएं निवृत्त हो गयीं, वह सुखी हो गया। वह सुखस्वरूप है।

क्रोध सबन को काल है, क्रोधहि है जंजाल।

शिव दुर्वासा क्रोधवश, बहुते भये बेहाल॥ 69॥

क्रोध काल है और क्रोध ही जीव का जंजाल है। शिव और दुर्वासा जैसे तपस्वी क्रोध के वशीभूत होकर बहुत दुखी हुए। इसलिए क्रोध त्याज्य है।

कपिल मुनि के क्रोध ने, मारे सगर के पूत।

सनकादिक ने क्रोध करि, राक्षस किये हरि दूत ॥ 70 ॥

कपिल मुनि ने क्रोध किया और सगर के पुत्रों को भस्म कर दिया। सनकादिकों ने क्रोध करके हरिदूतों को राक्षस बना दिया। यह अवतारवाद का प्रपंच फैलाने के लिए सब कहा गया है। सनक, सनन्दन, सनातन, सनतकुमार विष्णु के दरबार में जाना चाहे, तब दरबारियों ने कहा—आप रुकिये! आज्ञा ले लें! बस, इतने में, उन्होंने क्रोध में शाप दिया कि तुम राक्षस हो जाओ। दूतों ने क्या बुरा कहा था। आज्ञा लेना ही चाहिए और उनको धीरज रखना चाहिए। लेकिन सनकादिक जैसे विरक्तों को जिस प्रकार से चित्रित किया गया वह गर्हित है। उन्होंने शाप दिया जिससे हरि दूत राक्षस हो गये। वे रावण और कुंभकर्ण हो गये। यहां अवतारवाद का प्रपंच फैलाने के लिए सनकादिकों को क्रोधी बताया गया है। पुराणों के अनुसार साहेब कहते हैं कि सनकादिकों ने क्रोध करके हरिदूतों को राक्षस बना दिया।

तमोगुण को वैराग्य जो, औ तामस युत ज्ञान।

कृष्ण कहत अज्ञान यह, करत जीव की हान ॥ 71 ॥

जो तमोगुण के सहित वैराग्य है, और तामस युत ज्ञान है, उसके लिए श्री कृष्ण महाराज ने गीता में कहा है कि वह अज्ञान है और वह जीव के कल्याण में बाधक है।

ताते क्रोध न कीजिये, है अज्ञान अनूप।

समुझि बिचारो जगत में, तू सब तोर स्वरूप ॥ 72 ॥

इसलिए कभी भी क्रोध के आधीन न होओ। यह विलक्षण अज्ञान है। समझो और विचारो, इस संसार में सब तुम्हारे हैं, और तुम सबके हो।

यहां कौन पराया है, किस पर क्रोध करें?

निज कर लागे निजहि तन, अंगुरि गई निज आँखि ।

दशन चबाई जीभ निज, काको क्रोध करि भाखि ॥ 73 ॥

तैसे सबहिं विचारिये, क्रोध न करिये भाय ।

सब तेरे तू सबन का, काको जानि रिसाय ॥ 74 ॥

अपना ही हाथ अपने शरीर से लग जाता है। अपनी अंगुली अपनी ही आंखों में चली जाती है। अपने ही दांत अपनी जीभ को काट देते हैं। तब किस पर क्रोध करके गाली दी जाय। अपना मन मार कर रहा जाता है। इस पर हे भाई! विचारो, सब तुम्हारे हैं, तुम सबके हो। किसको पराया मानकर क्रोध किया जाय।

भूल से गलती होती है, क्षमा करो, दया करो। उसको सुधरने का अवसर दो, घृणा मत करो। क्रोध से कभी किसी का हित नहीं होता है। क्रोध के समय हमारी बुद्धि भ्रमित हो जाती है। हम ठीक से सोच नहीं पाते हैं कि क्या करना चाहिए। मस्तिष्क का ज्ञान-प्रकाश बुझ जाता है। इसलिए बहुत धैर्यवान होना चाहिए। कहा जाता है—न्यायाधीश को तेजवान होना चाहिए और तेजवान का मतलब क्रोधी। जबकि न्यायाधीश को तो और शांत होना चाहिए। न्यायाधीश हो, गुरु हो, समाज का अगुआ हो, घर का अगुआ हो, डॉक्टर हो, मास्टर हो, और कोई भी हो, जो कुछ लोगों को लेकर चलता हो, उसको बहुत धैर्यवान होना चाहिए। साथी लोग क्षुब्ध हो जायें तो हो जायें, वह क्षुब्ध न हो। तभी समूह निभाया जा सकता है। जहां बहुत लोग हैं, वहां सब एक प्रकार के नहीं होते। उनको लेकर चलने में बहुत मेहनत है। बिना धीरज के यह संभव नहीं है। इसलिए धीरज रखना बहुत जरूरी है। समाज के अगुआ को ही नहीं, गुरु को भी समझना चाहिए कि मैं समाज का सेवक हूं। गुरु को तो भूलकर नहीं मानना चाहिए कि मैं किसी का गुरु हूं। मैं समाज का सेवक हूं। क्रोध छोड़कर ही सेवा संभव है।

भूमि शयन तन बसन करि, फल भक्षत आराम ।

निशदिन रहत आरण्य में, तेहु सतावत काम ॥ 75 ॥

जो तपस्वी शरीर को ही वस्त्र मानते हैं—नंगे रहते हैं, जंगल में फल खाते हैं और भूमि पर ही आराम करते हैं और शयन करते हैं और रात-दिन जंगल में ही रहते हैं, उन्हें भी काम-वासना पीड़ित करती है।

गुरु-उपासना, संत-सेवा, भक्ति, ज्ञान, वैराग्य की साधना से ही वासना पर पूर्ण विजय मिलती है। साधक को कभी भी प्रमाद नहीं करना चाहिए कि मैं पूर्ण हूँ। बहुत सावधानी की जरूरत है। श्री विशाल देव ने कहा है—

है प्रारब्ध कुसंग जग, ताते नेम बनाय।  
सतसंगति आधार दे, साधन में ठहराय ॥  
सद्ग्रंथन को देखि के, शोधो मन निशियाम।  
आप-आप में सजग होय, बसो स्वतः निज धाम ॥

साधक कभी प्रमाद न करे। अपनी इन्द्रियों का निरर्थक स्पर्श कभी न करे। अपनी शक्ति कभी क्षय न करे। विरोधी आलम्बन के प्रति कभी उन्मुख न हो। पुरुष के लिए स्त्री और स्त्री के लिए पुरुष विरोधी आलम्बन हैं। कुचिंतन का छेद न होने दे। बड़े-बड़े बांध में बाल के बराबर छेद हो जाने पर धीरे-धीरे इतनी भयंकर धार फूट पड़ती है कि वह पूरे एरिया को पानी में डुबो देती है। कुचिंतन छेद है, जो साधक को भ्रष्ट कर देता है। कुचिंतन न करे। सदैव सादा और स्वल्प भोजन करे। कम खाने पर सदैव ध्यान दे। चाहे सुबह हो, चाहे शाम हो, चाहे दोपहर हो, सदैव कम खाये। खूब खाने वाले का ब्रह्मचर्य शुद्ध नहीं रहता। कम खाने से पेट साफ रहेगा और मन साफ रहेगा। स्फूर्ति रहेगी, शांति रहेगी। ब्रह्मचर्य के जितने नियम हैं, उनका दृढ़ता से पालन होना चाहिए। साधु-संगत, स्वाध्याय, ध्यान, चिंतन, रहनी, विवेक में रहे।

काम नहीं यह काल है, काम अपर्बल वीर।

जब उमगत है देह में, ज्ञानिन करत अधीर ॥ 76 ॥

यह काम नहीं, काल है, यह प्रबल वीर है। जब यह शरीर में उमगता है, तो ज्ञानियों को भी अधीर कर देता है।

इसके लिए उदाहरण हैं—नेमि ऋषि, विश्वामित्र, शृंगी ऋषि, नारद कितने नाम लिए जायें। ये लोग भटक गये। अपने को बड़ा मानने वाले



संगदोष में पड़कर बह गये। जब आदमी कुसंग में पड़ता है हजार ज्ञान की युक्तियां याद नहीं रहतीं। इसलिए परहेजगारी काम करेगी, बहुत ज्ञान काम नहीं करेगा। बौद्धिक ज्ञान, शास्त्रीय ज्ञान यह बहुत काम नहीं करेगा। सावधानी तथा कुसंग का वर्जन काम करेंगे। साधक को दृढ़ प्रतिज्ञा होना चाहिए कि हमारा मन कभी मलिन न हो। कुचिंतन पर सदैव सावधान रहे। सुबह से उठकर प्रतिज्ञा कर ले कि काम-कुचिंतन नहीं होने दूंगा, मन में आ जायेगा, तो तुरंत धक्का देकर हटा दूंगा। इसकी जब दृढ़ धारणा हो जाती है, तब काम चिंतन होता ही नहीं। जहां-जहां से कुचिंतन की संभावना हो वहां से सावधान हो जाय। जिन खान-पान, वस्तु, व्यवहार, बरताव, संग, भूमिका आदि से मन मलिन होने की संभावना होती है, उन्हें विष की तरह त्यागे। जो साधक स्त्री के अंगों का चिंतन करता रहेगा, और स्त्रियों से मिलने पर उन्मुख होकर उनका साथ करने की चेष्टा रखेगा, एकांत-लोकांत में मिलेगा, वह भ्रष्ट हुए बिना नहीं रह सकता। कुचिंतन बिलकुल होने न दे। स्त्रियां मिलें तो वे मां स्वरूप हैं। उनसे गंभीरता से मिले। व्यवहार करके, वहां से अलग हो जाय। बात करने के लिए उन्मुख न हों। कबीर साहेब ने कहा है—

नारी निरख न देखिये, निरख न कीजै गौर।

निरखत ही से विष चढ़े, मन आवे कुछ और ॥ कबीर साखी ॥

कबीर साहेब ने तो एक-एक विषय पर बीसियों, पचासों वचन कहे हैं। मनन करे, आचरण करे और उस पर चले। पुरुष की दृष्टि से उन्होंने कहा कि नारी को निरख करके न देखे। व्यर्थ घूर करके न देखे। निरख न कीजै गौर। निरख = गौर करना, ध्यान देकर देखना। साधक ऐसा न करे। निरखत ही से विष चढ़े। जब तुम निरखोगे, दृष्टि गड़ाकर देखोगे तो तुम्हारे मन में विष चढ़ जायेगा। मन आवै कुछ और। मन में कुछ और ही आयेगा, इसलिए बहुत सावधान!

जिन गहि जीता काम को, सोइ ज्ञानी सोइ सिद्ध।

नहिं तो थोथी बात है, घर घर करत असिद्ध ॥ 77 ॥

जिन्होंने पूर्णरूपेण काम-वासना को जीत लिया, वही ज्ञानी है, वही

सिद्ध है। नहीं तो ज्ञान-वैराग्य की बकबक व्यर्थ बात है। ऐसे बकवादी तथा कच्चे लोग तो घर-घर मारे-मारे फिरते हैं।

( कबीर मंदिर, प्रीतमनगर, इलाहाबाद

30 सितंबर, 1995 ई० )

---

## चौदहवां प्रवचन

विष बेली संसार में, प्रगट भई है नारि।  
सुर नर मुनि औ देवता, खाइनि सब जग झारि॥ 78 ॥  
हाड़ चाम औ रुधिर में, मांस चर्म में सोय।  
नारि कूपिका नरक की, समुझ सयाने लोय॥ 79 ॥  
मांस ग्रंथि उर रार मुख, रही रोमते छाय।  
नारि कहत याको सकल, डाँकिन होय जग खाय॥ 80 ॥  
ज्ञान हरै क्रिया हरै, बल वीर्य हरै लाज।  
यश लक्ष्मी कीरति हरै, हरै तप मुक्ति समाज॥ 81 ॥

काम का आलम्बन शरीर है। अपना शरीर भी एक माया है। उसी के कारण जीव अहंता-ममता में पचता रहता है। फिर दूसरे के शरीर को देखकर आकर्षित होता है—नारी के शरीर में नर और नर के शरीर में नारी। ये विरोधी आलम्बन हैं। इन आलम्बनों में मनुष्य का मन आसक्त होता है। ग्रंथकार कहते हैं, शरीर विष की लता है। इस विष की लता से प्रभावित होकर सब जीव विक्षुब्ध हैं। संसार के जितने मनुष्य हैं, उनका नाम सुर हो, नर हो, मुनि हो, देवता हो, जिनको वैराग्य नहीं है, वे अपने माने हुए शरीर में, दूसरे के माने हुए शरीर में आसक्त होकर भोग भोगना लक्ष्य समझते हैं। शरीर कल्याण-साधन है। भोग की दृष्टि से इसे देखा जाता है कि योग की दृष्टि से यह फर्क है। योग की दृष्टि से देखने से इससे कल्याण होगा और भोग की दृष्टि से देखने से नरक होगा। शरीर में है क्या? हाड़ है, चाम है, रुधिर है, मांस है, शरीर नरक का कुआं है। मांस की गांठें जगह-जगह हैं। चाहे वह छाती हो, मुख हो, चाहे टट्टी-पेशाब की जगहें हों, सब मांस की गांठ ही तो है। रोम-रोम में गंदगी है। जिसको लोग सुख का आधार मानते हैं, वह नरक की पोटली है। जो काम-भोग में पड़ता है, उसका ज्ञान हरण हो जाता है। उसके मन में जहर हो जाता है। बल-वीर्य,

यश-लक्ष्मी और कीर्ति इन सब का हरण हो जाता है। तपस्या उसके जीवन में नहीं रहती। मुक्ति की सारी सामग्री नष्ट हो जाती है। शरीर को काम में उद्वेगित करने वाले का चारों ओर से विनाश होता है।

कछु दिन बिलसत प्रीतिसों, मानत मन में मोद।  
 तन छूटे पर जाइके, बसी करत निज गोद ॥ 82 ॥  
 मनसा वाचा कर्मणा, त्याग कीजिए नार।  
 हतै स्वर्ग अपवर्ग सुख, दुखदाई निर्धार ॥ 83 ॥  
 बाधिन रूप धरि गाय के, वृषभन प्रिय करि मान।  
 सुख की बेड़ी याहि है, विश्वास घातिनी जान ॥ 84 ॥  
 मूत्र रक्त दुर्गन्ध दृढ़, अमेध्य धूपित द्वार।  
 चर्मकुण्ड में जो रमै, पचे सो तहाँ निर्धार ॥ 85 ॥

लोग कुछ दिन उल्लसित होकर काम-भोग में अपने को उद्वेगित करते हैं, आनंद मानते हैं। लेकिन जवानी चली जाती है। सारी योग्यता चली जाती है, और आदमी फिर उसी गर्भवास का पहना होता है। इसलिए मन से, वचन से, कर्म से काम-भोग का त्याग करना चाहिए। यह लोक-परलोक सब के सुख का नाशक है। शरीर जो हो, स्त्री के शरीर को पुरुष और पुरुष के शरीर को स्त्री आकर्षक, आनंदमय मान लेते हैं। किन्तु वह क्या है? भयंकर है। देखने में कोमल है। स्त्री के लिए पुरुष का शरीर आकर्षक है और पुरुष के लिए स्त्री का। लेकिन यह आकर्षक नहीं है, भयंकर है, दुखदायी है। यह काम-भोग ही सुख की बेड़ी है। इस बेड़ी में पड़कर लोग जीवनभर दुख पाते हैं। शरीर में पेशाब, रक्त, टट्टी और सब प्रकार की गंदगी ही भरी हुई है। अमेध्य धूपित द्वार यह अपवित्र है। इसका द्वार धूपित है, चिकनाया है। लेकिन अंदर में गंदगी ही भरी है। जो चाम के कुएं में रमता है, वह असहाय होकर दुख भोगता है।

कुटिल डिम्भ संयुक्त है, सत्य शौच नहीं ताहिं।  
 जीवन के बन्धन यही, प्रिय करि मानत जाहिं ॥ 86 ॥  
 तीन लोक की जननी, सो भग नर्क निदान।  
 तहाँ जाय जिव रति करत, अन्तहु सोई ठिकान ॥ 87 ॥

जानो नारी नरक है, निश्चय बंधन माँहि ।  
 ना जाने मन काहे को, तहँवाँ दौरा जाहिं ॥ 88 ॥  
 भग आदि कुच पासलों, घोर नर्क की खान ।  
 जो नर तहँवाँ रमत हैं, सो जियतहि नर्क समान ॥ 89 ॥  
 विष्ठा नरक को भोग यह, भग जो भया निर्मान ।  
 क्यों नहिं जानत चित्त तू, तहाँ क्यों धावत जान? ॥ 90 ॥

जिसको लोग सुख का साधन मानते हैं, उन स्त्री और पुरुषों के मन कितने कुटिल होते हैं। वे कितने दंभी होते हैं। वे एक-दूसरे को ठगते हैं। न उनमें शुद्धता है, न पवित्रता है। जीवन का बंधन काम-भोग है। जिसको लोग बहुत प्रिय मानते हैं, वह नरक की खदान है। वहाँ जीव पड़कर अंत में दुख पाता है। इसलिए सभी साधकों को समझना चाहिए कि शरीर नरक का घर है। यह तो निश्चित है इसे कामभोग की दृष्टि से देखने से बंधन है। फिर भी आदमी उसी में पचता रहता है। शरीर के जिन अंगों में हम आकर्षण मानते हैं, उन सब अंगों में क्या है? जहां-जहां आनंद मानते हैं, वहां-वहां टट्टी-पेशाब है। मुख में खखार है। आंखों में कीचड़ है, सारे शरीर में नरक है। जो आदमी इसमें रमता है, उसका अंत में नरक है। शरीर के सारे अंगों को विवेक से देखा जाय, तो यह हड्डी की झोपड़ी है, गीला चाम लपेटा है, टट्टी-पेशाब भरी है। काम-क्रोध, लोभ-मोह उद्वेगित करते हैं। पूरे शरीर में जहर है। इसको साधना की तरफ मोड़ देने से ही दुख से निवृत्ति होती है।

*यह तन विष की बेलरी, गुरु अमृत की खान ।*

*शीश दिये जो गुरु मिले, तो भी सस्ता जान ॥ कबीर साखी ॥*

यह शरीर विष की लता है, और गुरु अमृत की खान हैं। जिन्होंने अपने आपको पूर्ण देहाभिमान से निवृत्त कर स्वरूपस्थिति पायी है, वह अमृत है। ऐसा व्यक्ति अमृतमय हो जाता है। ऐसे अमृतमय गुरु की शरण में समर्पित होकर रहना चाहिए।

चर्मकुण्ड दुर्गन्ध दृढ़, भग सो नर्क बखान ।

देव दैत्य औ नर सकल, खण्ड्यौ सबन को ज्ञान ॥ 91 ॥

जो चाम का कुआं और दुर्गन्ध का घर है, चाहे इसमें देवता रमते हों, दैत्य रमते हों, अच्छे रमते हों, बुरे रमते हों सबका ज्ञान थोथा है। उन सबका ज्ञान खण्डित हो जाता है, बेकार हो जाता है।

देह नर्क महा घोर में, पूरित श्रोणित जान।

निर्माण भई बड़वामुखी, भग मुख तिरिया जान॥ 92॥

यह देह नरक है, महाघोर है, घृणित है, रक्त से भरा है, यह बड़वामुखी के समान है। बड़वामुखी निरंतर प्रज्वलित रहता है। इसी प्रकार देह में सब समय ताप प्रज्वलित है? मानसिक ताप, शारीरिक ताप, हर प्रकार से ताप हैं। इस ताप को शांत करने के लिए ज्ञान, भक्ति, वैराग्य ही औषध है। इस औषध का सेवन करें, नहीं तो उसी बड़वामुखी के ताप में जलना पड़ेगा।

भीतर सब विधि नरक है, बाहर कीन्ह सिंगार।

तू नहीं जानत बावरे, ज्ञान विरोधिनि नार॥ 93॥

जिस शरीर को तुम आनंद का घर मानते हो, वह बाहर से शृंगार करके क्षणिक आकर्षण उत्पन्न करता है। लेकिन वह नरक की पोटली है। ऐ पगले! तुम नहीं जानते हो कि देहाभिमान ज्ञान-ध्यान का विरोधी है। उसमें पड़कर सब चौपट हो जाता है।

क्यों नहीं जानत चित्त तू, भग है बन्धन रूप।

दुर्गन्धित अतिशय मलिन, जाय परत तेहि कूप॥ 94॥

मनुष्य को समझना कि यह जो क्षणिक भोग है, बंधन रूप है। इसमें पड़कर आदमी अपने आपको खो देता है। यह अत्यन्त दुर्गन्ध्युक्त, अत्यन्त गंदगी का ठौर है, ऐसे अंधकार के कुएं में क्या पड़ते हो।

ऐसो मलिन विचारि के, ज्ञानिन त्यागो सोय।

ताहि जीव नित चाहै, महा विडम्बन होय॥ 95॥

इस प्रकार इसकी मलिनता को विचार कर ज्ञानियों को काम-भोग का त्याग करना चाहिए। अगर इसमें कोई रमता है तो वह महा धोखे में है।

तत्र मूत्र जो रमत है, देव दैत्य नर कोय।  
ते निश्चय नरक गये, संशय करो न कोय ॥ 96 ॥

देवता, दैत्य, मनुष्य कोई भी हो; मनुष्य ही देवता-दैत्य है। अगर अपने को काम-भोग में उत्पीड़ित करता है, तो निश्चय समझ लो कि वह अपना नरक कर रहा है।

अग्नि कुण्ड सम नारि है, घृत समान नर होय।  
छूवत ही पिघलत तुरत, ताते वर्जित सोय ॥ 97 ॥

जैसे अग्नि के संपर्क में घृत पिघल जाता है, वैसे स्त्री या पुरुष एक-दूसरे के संपर्क में आकर विचलित हो जाते हैं। इसलिए एक-दूसरे की संगत वर्जित है। पर-पुरुष से नारी दूर रहे और पर-नारी से पुरुष दूर रहे और साधिका पुरुष मात्र से तथा साधक नारी मात्र से दूर रहे।

गुड़ महुआ और दूध की, तृतिया मदिरा जान।  
चौथी मदिरा नारि है, मोहा सकल जहान ॥ 98 ॥

गुड़, महुआ और दूध से लोग मदिरा बनाते हैं। लेकिन महा भयंकर मदिरा तो देह का अभिमान है, कामभोग का नशा है, जिसमें सारा संसार मोहित है। इसलिए इस मदिरा का त्याग करो।

मदिरा नारी कुटिलनी, दोड त्यागिये मीत।  
अश्वस्थित करै चित्त को, नरक दायिनी नीत ॥ 99 ॥

हे मित्र! शराब और काम-भोग दोनों त्यागने योग्य हैं। देहाभिमान तथा काम-भोग में उन्मत्त स्त्री-पुरुष कुटिल होते हैं। वे एक दूसरे को छलते हैं और उसी भोग को जीवन-प्राण मानते हैं। देहाभिमान एवं काम-भोग चित्त को अस्त-व्यस्त कर देता है और उसका जीवन नरक हो जाता है।

नारी यंत्र न त्यागिया, मोहित भया निदान।

ते दृढ़ बन्धन में परे, धृग ताको सब ज्ञान॥ 100॥

काम-भोग के कोल्हू में पिसने की प्रक्रिया जिन्होंने सर्वथा नहीं छोड़ी और अंततः मोहित होकर उसी में पड़े रहे, वे कठोर बंधन में पड़ गये। उनके सारे ज्ञान को धिक्कार है।

ज्यादातर पुरुष साधक हुए हैं। वैराग्यवान हुए हैं, इसलिए वे अपने विरोधी आलंबन से अपने मन में वैराग्य उत्पन्न करने के लिए स्त्री-देह पर घृणा व्यक्त किये हैं। स्त्री साधिका को इसी प्रकार पुरुष के लिए समझकर अपने मन में वैराग्य उत्पन्न करना चाहिए।

नष्ट चित्त को करत है, धात करत है नाश।

चिन्ता को उत्पत्ति करत, नारि रहत जो पास॥ 101॥

स्त्री साथ में रहेगी तो चित्त विचलित होगा, वीर्य नष्ट होगा तथा मन चिंताग्रस्त होगा। पुरुष की संगत से स्त्री का उसी प्रकार पतन होगा।

कामभोग में पड़ने वाले का चित्त नष्ट होता है, भ्रमित होता है। उसके शरीर का जो सार (वीर्य) है, वह नष्ट होता है। जैसे कोई बहुत-सा दूध मथकर घी निकाले, और वह अभागा उसे ले जाकर नाली में डाल दे, तो लोग उसे क्या कहेंगे? वैसे खान-पान से जो शरीर में वीर्य इकट्ठा होता है, और जो शरीर के लिए हितकर है, उसको निचोड़कर फेंक देना कितनी निर्बुद्धिता है। आदमी जितना कामातुर होता है, उतना चिंतातुर होता है इसलिए इसे त्यागो।

सर्वत्र चित्त को रक्षिये, कहुँ जाने नहिं पाय।

सो ज्ञानी दृढ़ जगत है, जाहि नारि नहिं खाय॥ 102॥

अतएव सब तरफ से मन को समेटो। वह कहीं भटकने न पाये। संसार में वही पक्का ज्ञानी है जो मन, वाणी और कर्म से कामवासना से सर्वथा मुक्त है।

अपने चित्त की सर्वत्र रक्षा करो। कुचिंतन न होने दो। गलत आहार-विहार-व्यवहार न करो। अपने को समेटो, अंतर्मुख होओ, और



कामवासना तथा कामभोग का सर्वथा त्याग करो। काम पर सद्गुरु श्री पूरण साहेब ने बड़ा तीव्र प्रहार किया है। पुरुषों के मन में नारियों के प्रति जो आकर्षण होता है, उसके प्रति घृणा और वैराग्य पैदा किया है। लेकिन नारियां भी कल्याणार्थी होती हैं। उनका मन पुरुषों के शरीर में जाता है। तो नारी और पुरुष कुछ नहीं, दोनों दोनों को देखकर आकर्षित होते हैं, इसलिए दोनों दोनों से सावधान!

नारी मोहे पुरुष को, पुरुष वशी सो होय।

बड़ी परस्पर लाग है, जीव विकल रहे रोय ॥ पंचग्रंथी ॥

सद्गुरु श्री रामरहस साहेब ने कहा है कि नारी पुरुष को मोहती है और पुरुष के वश में नारी हो जाती है। दोनों में बड़ी लाग है। इसमें पड़कर जीव विकल होकर रोते हैं। इसलिए इसका त्याग करो। ज्ञानी वही है जो इसका सर्वथा त्याग कर देता है।

वर्षत मेघ अखण्ड विधि, हरियर भई बन घास।

हम बैठे गिरि कन्दरा, कोई न आवत पास ॥ 103 ॥

वर्षा आ गयी है। बादल अखण्ड रूप से वर्षा कर रहे हैं। जंगल की घास हरी-भरी हो गयी है। मैं पर्वत की कंदरा में बैठा हूँ। मेरे पास कोई नहीं आ रहा है।

खगकुल मृगकुल रहत बन, सोई हमारे मीत।

भादों रात अन्धारिया, नहिं काहू की भीत ॥ 104 ॥

पक्षी और पशु वन में रहते हैं। वे ही हमारे मित्र हैं। भादों की अंधियारी रात है, परंतु मुझे किसी का भय नहीं है।

सब तरफ से निष्काम हो जाने पर पूरी निर्भयता आ जाती है। शरीर से संसार तक की आसक्ति सर्वथा छूट जाने पर किस बात का भय हो सकता है!

निर्भय निज पद में रहै, सर्प सिंह लिये साथ।

कहा ग्राम पुर पाटन, कहा धनिक नृप नाथ ॥ 105 ॥

हम निर्भय अपने पद में हैं, निज स्वरूप में हैं। सांप और सिंह अपने साथ में लिए हैं। सांप-सिंह लेने का मतलब है, जंगल और पर्वत में सांप और सिंह रहते ही हैं। ग्राम हो, पुर हो, पाटन हो, धनिक हो, नृप हो, स्वामी हो, उनसे हमें क्या प्रयोजन है?

कोइ न हमारो जगत में, न हम काहु के मीत।

सत्संगति प्रताप बल, रहे मोह गढ़ जीत॥ 106॥

न कोई हमारा है, न हम किसी के हैं। हमारा कोई मित्र नहीं, हमारा कोई शत्रु नहीं। सत्संग के प्रताप से हम मोह गढ़ पर विजय प्राप्त करते चले जा रहे हैं। मोह पर विजय हो जाना जीवन की सफलता है। संसार को तो छोड़ना है ही। मोह करके छोड़ो, चाहे मोह त्याग कर छोड़ो। कोई बच नहीं सकता। इसलिए मोह त्याग कर छोड़ो। अपना कर्तव्य करो, और मोह त्याग कर रहो। अंतिम में छोड़ोगे तो अभी मोह करके क्या करोगे? हमें निर्मोह अवस्था में जीना चाहिए।

धारा वर्षे मेघ की, घट में वर्षे प्रेम।

हम बैठे आनन्द में, राति-दिवस नहिं नेम॥ 107॥

बाहर आकाश से मेघ की धारा बरसती है। बादल पानी की धारा बरसाते हैं, और हमारे हृदय में प्रेम की धारा बरसती है—स्वरूप प्रेम, आत्म प्रेम। मनुष्य यही तो चाहता है कि अखण्ड आनन्द मिले, अनंत सुख मिले। और वह कहीं बाहर नहीं, वह आनंद अपने में है। कामनाओं का परित्याग कर अपने आप में स्थित हो, बस आनंद। देश और काल की दूरी जिसमें हो, वह चिंता का विषय हो सकता है। जो दूसरे देश में मिले और दूसरे काल में मिले, उसमें परेशानी है। जो इसी काल में है और इसी देश में है उसके लिए क्या परेशानी है। अपना स्वरूप दूसरे देश-काल में नहीं मिलता, किन्तु इसी देश-काल में है। जिस देश में बैठा हूं, मैं स्वयं हूं। और इसी काल में मिलता है। अपने से मिलने की बात क्या है? वह तो मिला-मिलाया है। बस, मन का मोह छोड़ना है, जो बाहर का है। बाहर का मोह है इसलिए हम अपने से नहीं मिलते हैं। बाहर का मोह छूट गया, फिर न रात, न दिन, हम सदैव स्वरूपमग्न हैं।

ऊपर चमकै बिजुली, घट में ज्ञान प्रकाश।

अनहद गरजै मेघ जो, छूटि जगत की आश॥ 108॥

ऊपर आकाश में बिजली चमकती है, और हमारे हृदय में ज्ञान का प्रकाश है। ऊपर मेघ गरजते हैं और हमारे दिल में अनहदनाद की गर्जना होती है। अनहदनाद-श्रवण भी एक साधना है। जिसमें कानों को बंद कर उसे सुना जाता है। अभ्यासी को बिना कान बंद किये ही सब समय सुनाई पड़ता है। क्योंकि शरीर एक बहुत बड़ा संयंत्र है, और इस यंत्र में आवाज होती रहती है। जगत की हमारी सारी कामनाएं छूट गयी हैं।

घट आनन्द धारा बहै, ऊपर बहै जो नीर।

मोहिं हर्ष नहिं शोक कछु, चहुँदिश बहै समीर॥ 109॥

बाहर पानी की धारा बहती है और मेरे हृदय में आनंद की धारा बहती है, क्योंकि कामवासना, तृष्णा नहीं है। कुछ बाहर से पाने की जरूरत नहीं है। इसलिए मैं आनंदधाम में हूँ। इसलिए मुझे न हर्ष है और न शोक है। चारों तरफ हवाएं बह रही हैं, मैं आनंद में लीन हूँ।

पपिया पिउ-पिउ करत हैं, चहुँदिश कुहकत मोर।

हम बैठे आनन्द में, सुनत श्रवण ते शोर॥ 110॥

पपीहा पक्षी पीव-पीव की आवाज करते हैं। चारों तरफ मोर कुहकते हैं। मैं आनंद में बैठा हूँ और उनके शोर आनंद से सुन रहा हूँ।

यहि विधि वर्षा बीतई, आई शरद अनयास।

निर्मल बादल हो गये, चहुँदिश फूली कास॥ 111॥

इस प्रकार वर्षा ऋतु बीत गयी, और अनायास शरद ऋतु आ गयी। बादल छट गये और आकाश स्वच्छ हो गया। काश नाम की घास चारों तरफ फूल गयी। जब काश फूल जाती है, तब किसान समझ जाते हैं, अब वर्षा ऋतु समाप्त हो गयी।

देखि शरद की चाँदनी, उत्तम शिला अपार।

निर्मल जल सरितान को, अरु आरण्य विहार॥ 112॥

शरद ऋतु की चाँदनी देखी, और उत्तम विशाल शिला पर आसन लगाया। पहले तो गुफाओं में था, क्योंकि वर्षा थी। अब खुले में आ गया। मैं नदी का निर्मल जल पीता हूँ और जंगल में स्वच्छंद विहार करता हूँ, भ्रमण करता हूँ, घूमता हूँ।

भूख लगी तब माँगिबो, भीख अन्न एक बार।

भक्षण करि सरितान को, नीर पीजिये सार॥ 113॥

जब भूख लगती है तब तराई में उतर जाता हूँ। बस्ती में एक बार भिक्षा कर खा लेता हूँ और नदी से पानी पी लेता हूँ।

नींद लगे तब सोइये, उत्तम थल एकान्त।

ओढ़ि गूदरी इन्द्र ज्यौं, वृत्ति करिये निरान्त॥ 114॥

जब नींद लगी तब स्वच्छ एकांत स्थान में सो गये। मेरा ऐश्वर्य इंद्र के समान ही नहीं, उससे ऊँचा है। गुदरी ओढ़कर सो गये अथवा जब तक जागते रहते मनोवृत्ति को शांत कर समाधिमग्न रहे।

चलन फिरन स्वच्छन्द सो, काहु की नहिं आश।

राजा रंक समान हैं, रहै न काहु के पास॥ 115॥

स्वच्छन्द होकर चलते-फिरते हैं। किसी से कोई आशा नहीं रखते हैं। हमारे लिए राजा और दरिद्र एक समान हैं। हम किसी के पास न रहकर स्वच्छन्द रहते हैं।

श्मशान में गृह शून्य में, की धूनी के पास।

की तो ओढ़े गूदरी, की तो बिछावै घास॥ 116॥

श्मशान में, सूने घर में या धूनी के पास घास बिछा और गुदड़ी ओढ़कर सो जाते हैं या ध्यान करते हैं।

शरद निशा की चाँदनी, चहुँदिश करत विहार।

भूमि शयन वल्कल वसन, कन्द मूल फलहार॥ 117॥

मैं शरद निशा की चाँदनी में वन की सब दिशाओं में भ्रमण करता हूँ, भूमि पर सोता हूँ, वृक्षों की छाल पहनता हूँ और कंद, मूल तथा फल का भोजन करता हूँ।

शरद निशा की चाँदनी बहुत प्रशंसनीय है। क्योंकि गरमी में जमीन खुश्क हो जाती है और तेज हवा चलती है जिससे धूल उड़-उड़कर आकाश में छा जाती है। आकाश गर्दा-गुब्बार से भरा रहता है। इसलिए उस समय की चाँदनी अच्छी नहीं लगती है, धूमिल रहती है। वर्षा काल में बारिश से सारी धूल जमीन में आकर बैठ जाती है। जब शरद का समय आता है, तब आकाश निर्मल हो जाता है। न उस समय गरमी है, न ठंडी है और न वर्षा। उस समय की चाँदनी मनोहर होती है। बाहर शरद-निशा की चाँदनी है और भीतर ज्ञान-वैराग्य की चाँदनी है।

बीति शीत यहि भाँति सो, आयो सरस बसन्त।

आँबा टेसू फूलही, शोभित बन दर्शन्त॥ 118॥

इस प्रकार शीत काल बीत गया और बसंत ऋतु आ गयी। अब आम और टेसू फूल गये। इसलिए वन सुंदर दिखने लगा।

शिला पलंग दिग बसन करि, वापी कूप तड़ाग।

शीतल छाया वृक्ष की, निर्विकल्प वैराग॥ 119॥

शिला को पलंग बना लिया, और दिशाओं को वस्त्र बना लिया। वापी, कूप, तड़ाग मेरे जल-पात्र हैं। वृक्ष की शीतल छाया है और कल्पनाशून्य वैराग्य है।

फल पावत उत्तम सरस, पीयत शीतल नीर।

गावत उत्तम गीत तहाँ, त्रिविधि बहत समीर॥ 120॥

जंगल के उत्तम मीठे फल खाते हैं, नदी-झरने के शीतल जल पीते हैं, और वैराग्य के उत्तम गीत गाते हैं। चारों तरफ शीतल-मंद-सुगंध हवा चल रही है।

कहा मन्दिर सम्पत्ति कहा, कहा त्रियन के भोग।

ये सबहीं छिन भंग हैं, अचल समाधि योग॥ 121॥

महल, मंदिर, सम्पत्ति-ऐश्वर्य और सुंदरियों का सहवास कहां स्थिर सुख दे सकते हैं? ये सब क्षणभंगुर हैं। निर्विकल्प अविचल समाधि जो सच्चा योग है वही स्थिर सुख देने वाला है।

मंदिर और बड़े-बड़े भवन क्या हैं? ईंट-पत्थर। स्त्री-पुरुष का सहवास क्या है? मलिनता और क्षीणता। अचल समाधि में स्थिति ही जीवन का फल है। बाहर का पट बंद कर, भीतर का पट खोल। बाहर के पट को बंद करो और भीतर के पट को खोलो। बाहर जो मन खिंचता है, उसके प्रति वैराग्य करो। एकाग्रता जीवन की सफलता है। धन, मठ, पद, प्रचार, शिष्य, शाखा लोक हित के लिए ठीक हैं। लेकिन ये अपने लिए कुछ काम करने वाले नहीं हैं। कोई बड़ा आश्रम बना ले, इससे वह बड़ा साधक नहीं है। उसके बहुत चेले-चाटी हो गये, इससे वह सफल नहीं। धन बहुत इकट्ठा हो गया, इससे वह सफल नहीं है। दुनिया के पदार्थों को बटोर लिये इससे वह सफल नहीं है। सफल वह है, जो समाधि में जाये। मन को एकाग्र करे, निर्विकल्प हो, आत्मतुष्ट हो, आत्मसंतुष्ट हो।

मठाधीशों में प्रायः यह भ्रम है कि वैराग्य की चर्चा से साधु आलसी हो जायेंगे। महंत लोग चाहते हैं कि मठ में ज्ञान-वैराग्य की चर्चा न हो। उनका मत है, काम-धाम खूब करो। ज्ञान-ध्यान की चर्चा करोगे तो काम-धाम सब छोड़ दोगे। दो-दो घंटा सुबह-शाम बैठकर ध्यान और पठन-पाठन क्यों करते हो। अरे! कुदारा लो और खेत में जाओ और काम करो। ऐसे महंत श्री पूरण साहेब का वंदना सोरठा पाठांतर कर ऐसा बना लेते हैं—

बंदों चरण सरोज, जिन्ह यह कुदारा निर्मयो।

परख दिखायो खोद, ते गुरु सम दूजा नहीं॥

जिन्होंने कुदाली का निर्माण किया, उनके चरणों की वंदना है। उन्होंने खोदकर, परखकर दिखाया कि इसमें से अन्न मिलता है। उन गुरु के समान दूसरा कोई नहीं! ऐसे-ऐसे महंत होते हैं। जीवन भर हाय-हाय करते-

करते चले जाते हैं। इसलिए—

ज्ञान बढ़े वैराग्य बढ़े, होय अचाह निष्क्रिय।  
और बढ़े तो का बढ़े, बिन कलिमल मन जिक्र ॥

(विशाल वचनमृत)

ज्ञान-वैराग्य बढ़े तो आदमी निष्काम हो, निश्चित हो। लौकिक धन बढ़ा तो क्या बढ़ा? बिना मनोविकार के मनोद्वेग नहीं होता। इसलिए साधु के जीवन में ज्ञान-वैराग्य बढ़ना चाहिए, समाधि-लाभ होना चाहिए और समाधि-लाभ तभी होगा, जब अखण्ड वैराग्य होगा। निरंतर चिंतन-मनन से वैराग्य बढ़ता है। स्वाध्याय, सत्संग, साधना, चिंतन-मनन से वैराग्य बढ़ता है। अंदर की कसर धीरे-धीरे समाप्त हो जाती है। मन का कुचिंतन घटता जाता है। धीरे-धीरे चित्त निर्मल हो जाता है। किसी प्रकार का आकर्षण नहीं रहता।

स्वाद में, गंध में, स्पर्श में, मान-बड़ाई में, पद-प्रतिष्ठा में जो आकर्षण है, साधना में लगने पर अपने आप छूटता चला जाता है। सारा आकर्षण बालपन है। सारा आकर्षण एक भ्रम और झाँझ है। श्री पूरण साहेब ने कहा है—झाँझ झाँकते जीव भटक गया। झाँझ, परिछाँझ, आभास, भ्रम, अध्यास ये हमारे मन के धोखे हैं। जितना वैराग्य बढ़ेगा, हम उतना स्ववश होते जायेंगे। आत्मतुष्टि, आत्मशांति, आत्मतृप्ति जीवन की सफलता है। और कोई चीज किसी के काम आने वाली नहीं है। हाय-हाय करते-करते गृहस्थ मरते हैं, और कितने साधु-वेषधारी भी मरते हैं। कल्याण का काम करने वाला ही सफल है।

हहा हाय हाय में सब जग जाई। हर्ष सोग सब माहि समाई ॥  
हँकरि हँकरि सब बड़ बड़ गयऊ। हा हा मर्म न काहू पयऊ ॥

( बीजक, ज्ञान चौंतीसा )

हर्ष-शोक में पड़कर हाय-हाय करते हुए सारा संसार मर रहा है। हाय-हाय जिसके चित्त से मिट गया, उसी का जीवन सफल है।

( कबीर मंदिर, प्रीतमनगर, इलाहाबाद

1 अक्टूबर, 1995 )





## पंद्रहवां प्रवचन

ना काहू सो माँगना, ना काहू को देन।

अनइच्छा जो कछु मिलै, सो भोजन करि लेन॥ 122॥

न किसी से कुछ माँगना है और न किसी को कुछ देना है। बिना इच्छा किये जो कुछ मिल गया, उसे शुद्ध सुपाच्य देखकर ग्रहण कर लिया।

कथन के कई रूप होते हैं और सभी रूप सापेक्ष होते हैं। सापेक्ष का मतलब है एक तरह से। इसलिए साधक को सम्यक दृष्टि अपनानी चाहिए। इसी ग्रंथ में सद्गुरु श्री पूरण साहेब ने कहा है, जब भूख लगे, तब एक बार भिक्षा माँग कर खा लेते हैं। यहां कहते हैं, किसी से न माँगना है, न किसी को कुछ देना है। ये दोनों ही स्थितियां अलग-अलग हैं। ऐसा रहे कि मांगे न, जो मिल जाय, खा ले। संतोष रखो मिल जायेगा। मान लो, ऐसी स्थिति हो वहां कोई देनेवाला ही न हो। कोई समझता ही न हो, तो भूखों मरना समझदारी नहीं है। इसलिए उस स्थिति में माँग लो। न माँगना न देना। जब कुछ पास है ही नहीं तब देने का क्या प्रसंग है। पास में है, और स्थिति आने पर नहीं देता है, और कहता है कि पूरण साहेब ने लिखा है कि न दें। मैं माँगता भी नहीं और दूंगा भी नहीं, यह समझदारी नहीं है। मैं नहीं माँगता हूं, लेकिन पास में चीज है, तो समय आने पर किसी को देना चाहिए।

जासु मोह सब जीव को, डर उपजत है जान।

सो देही छिन भंग है, ठहरै नाहिं निदान॥ 123॥

जिस देह के मोह को लेकर मन में डर उत्पन्न होता है कि इसका क्या होगा, वह तो क्षणभंगुर है। अंततः नष्ट होगा ही।

शरीर को लेकर लोगों को डर उत्पन्न होता है, यह रोगी होगा, असहाय होगा, बूढ़ा होगा। कहां इसकी सेवा होगी, क्या होगा? जो मैं प्रबंध करता

हूं, जब मैं नहीं रहूंगा, तब इसका प्रबंध कैसे होगा? साहेब कहते हैं कि यह तो क्षणभंगुर है। अंत में क्या रहेगा, इसके लिए क्यों चिंता करते हो। सहज गुजर करते चलो। जब रोग लग जायेगा तब सेवा करने वाले स्वाभाविक हो जायेंगे। हम अनेक योनियों में रहे, कोई वहां सेवा करने वाला नहीं रहा, और गुजर हो गया। अपने मन को पहले से पीड़ित न करो। जिसको ऐसी चिंता होती है कि इतने साल तक मैंने प्रबंध किया है, मैं नहीं रहूंगा तब कौन प्रबंध करेगा, वह महा भोला है। कौन प्रबंधक यहां बैठा रहा। बड़े-बड़े साधु, ऋषि, महर्षि, राजा, महाराजा, सम्राट यहां कौन बैठा रहा। काम कर लिये और चले गये। आज जिनकी गर्ज है वे करते हैं। इसलिए ऐसी बात अपने चित्त पर कभी लायें ही न। किसी बात को लेकर दीन न बनें।

नाशवान जो वस्तु है, सो तो ठहरै नाहिं।

तासों लोभ न कीजिये, यह निश्चय मन माहिं॥ 124॥

जो नाशवान वस्तु है, वह हमेशा के लिए ठहर नहीं सकती। इसलिए उसका लोभ मत करो। मन में यह निश्चय रखो कि मन नाशवान वस्तुओं का चिंतन न करे। मनुष्य अपना ज्यादा समय किसमें बरबाद करता है? जो आगमापायी वस्तु है, उसको सोच-सोचकर! सोचो, आत्मस्थिति कैसे हो? तुम्हारा अपना होना एकरस है। तुम्हारे जो आस-पास है, वह एकरस नहीं है। मैं और मेरा मैं एकरस है, मेरा एकरस नहीं है। मेरा जो कुछ माना है, वह आने-जाने वाला है। और जो मैं तत्त्व है वह एकरस है, अतः अपना समय स्वरूप-चिंतन में बिताये, भौतिक चिंतन में नहीं। सांसारिक वस्तुओं को सोचो कुछ और, हो जाता है कुछ और। अगर सोचो कि इस समय वहां जायेंगे तो वैसा होगा और जाओ तो एकदम भिन्न स्थिति होती है। दृश्य बदल जाता है। जितना तुम्हारा सोचना है वह अलग धरा रह जाता है। अपने ढंग से हो जाता है। आदमी अपने ढंग से सोचता है कि हमारे बाद ऐसा होगा तब वैसा होगा। तुम सोचते रहो, तुम्हारे बाद सब अपने ढंग से हो जायेगा। तुम्हारे रहते-रहते अपने ढंग से हो जायेगा। जीवन में रहते-रहते जो सोचो, वह न होकर जो न सोचो वैसा हो जाता है। सोचा सो होवै नहीं, अनसोचा सो होय। इसलिए भौतिक पदार्थों

के लिए ज्यादा न सोचे। खास प्रोग्राम के लिए तो सोचना होगा। लेकिन ज्यादा गढ़े-गुढ़े न। जब जो होगा, हो जायेगा। बारम्बार सोचना है स्वरूप-स्थिति को, संसार की नश्वरता को और आत्मा की अमरता को। इन बातों को हमेशा सोचे। मन के कांटा को निकाल दे, मन की पीड़ा को निकाल दे। भौतिक वस्तुओं का विकास तो बहुत साधारण लोग भी करते हैं। इसलिए इसकी चिंता नहीं होनी चाहिए। चिंता होनी चाहिए निश्चिंत होने के लिए।

जमीन का बड़ा भूखण्ड प्राप्त कर लेना, बड़ी-बड़ी बिल्डिंगें बना लेना, बैंक में खूब रुपये जमा कर लेना, प्रचार-प्रसार कर लेना, ये तो बहुत लोग करते रहते हैं, और होता रहता है। अपने मन को समेटकर समाधिलीन होना, यह दुर्लभ है। यही करने वाले ही सफल हैं। यह करें और बाहर जितना हो, हो, न हो, न हो। बाहर की चीज कभी पूरी और अपने मन के अनुसार नहीं होती है। यह भी विश्वास करना चाहिए कि केवल करने से नहीं होता है। कई करने वाले हैं, नहीं कर पाते हैं। उसमें कुछ भवितव्यता होती है। जो भवितव्यता होगी हो जायेगी। जो स्वतंत्र काम है, वह स्वरूपस्थिति है। उसमें आगे बढ़ो, शांत-स्ववश मन हो। समय-समय से समाधिलीन हो। चित्त की आग बुझे। समय भागा जा रहा है। मौत निकट आ रही है। शरीर को आज-कल में काल उठा लेगा। उसके उठाने के पहले अपने मन को संसार से उठा कर अपने आप में पूर्ण विश्राम पा जाओ। यही जिंदगी की सफलता है। कर्तव्य होने वाला है वह होता रहेगा। व्यवहार भी क्षणिक है। इसलिए अपना काम करो।

मैंने उस दिन कहा था कि ईसा की पांचवीं शताब्दी के आरम्भ में फाह्यान चीन से भारत आया था, यहां का भ्रमण करने के लिए तो वह श्रावस्ती को देखा था, जो गोण्डा जिले में है। कुशीनारा को देखा था, जो देवरिया जिले में है। सारनाथ को देखा था, जो बनारस के पास है। इन सब जगहों के लिए उसने लिखा है, उजाड़ है। यह ईसा के चार सौ वर्ष बाद की बात है। वह सब उजड़ा हुआ है।

बौद्धों का नालंदा विश्वविद्यालय जिसमें मोटी-मोटी दीवारें हैं, जिस पर कार चली जाय, खुदाई में निकला। काफी ऊंची दीवारें हैं। वह सब

आज अवशेष है, तक्षशिला में केवल नाम है। तक्षशिला की बड़ी प्रसिद्धि रही है। दृश्य परिवर्तन होता रहता है। लेकिन जो ज्ञान का प्रवाह है वह चलता रहता है। हमको ज्ञान की गर्ज थी, इसलिए इस मार्ग में आये। जब इसको सत्य समझा तो समर्पित हो गये। इसके लिए जो बन सका किये और किया जा रहा है।

सद्गुरु श्री रामरहस साहेब ने बीजक की भावात्मक टीका 'पंचग्रंथी' लिखकर गया में छोड़ी और उसकी कापी श्री काशी साहेब ने शोधकर श्री वेंकटेश्वर स्टीम प्रेस बंबई में छपवाया। उसकी श्री महाराज राघव साहेब ने टीका की, फिर श्री रामस्वरूप साहेब ने की। मैंने टीका की। श्री रामरहस साहेब हम लोगों के पीछे कहां डंडा लेकर पड़े थे कि तुम लोग मेरी पुस्तक की टीका करो। वे तो पंचग्रंथी की कापी छोड़ गये थे। हम लोग उसको लिख-पढ़ रहे हैं, गा रहे हैं। श्री पूरण साहेब बीजक टीका त्रिज्या लिखकर छोड़ गये। कई दशक के बाद प्रकाशित हुई और बराबर प्रकाशित हो रही है। गीता बनाने वाले, त्रिपिटक की रचना करने वाले, जैन आगमों की रचना करने वाले, वेदों-शास्त्रों की रचना करने वाले कौन बैठे हैं? पीछे जिनको दर्द होता है, वह काम करता है। तो किसी भौतिक बात को लेकर जो सोचता है वह समझदार नहीं है। सोचना चाहिए अपनी अमरता के लिए, शांति के लिए, आत्मतृप्ति के लिए। ऐसी जिंदगी जीयें, जो दुखहीन हो, जिसमें परम विश्राम हो। यही जिंदगी की सफलता है।

अविनाशी चैतन्य जो, सबको जाननहार।

सो तू निश्चय धारि ले, सुखमय अबनि बिहार ॥ 125 ॥

तू अविनाशी चेतन है, सबको जानने वाला है, इस स्वरूपविचार को दृढ़तापूर्वक धारण करो, और संसार से निष्काम होकर पृथ्वी पर सुखपूर्वक भ्रमण करो, निवास करो, जीवन बिताओ।

तुम समझो कि तुम नित्य हो, और सब कुछ अनित्य है। अनित्य पदार्थों में मन न बांधो। अपने नित्य स्वरूप में स्थित होओ। अपने मन को समेट लेने पर भय नहीं रहता। भय तो बाहरी पदार्थों में मोह करने से होता है।

परकाशी प्रकाशते, सबको परखनहार ।

ना काहू सो काम है, ताको समुझ विचार ॥ 126 ॥

ज्ञान-प्रकाशी चेतन अपने ज्ञान-प्रकाश से सबको परखने वाला है। उसको इस संसार में किसी से कोई प्रयोजन नहीं है। इस तथ्य को समझो और विचारो।

सकल परखना न कछु गहना, पारख ऊपर थिर होय रहना। यह निर्णयसार में सद्गुरु श्री पूरण साहेब ने कहा है। सबको परखना लेकिन कुछ पकड़ना नहीं, और पारख में स्थित होना। “जहां से तू सबको परखा, सोइ तेरा स्वरूप पारख है।” ऐसा बारम्बार त्रिज्या में सद्गुरु श्री पूरण साहेब ने कहा है। त्रिज्या ओजपूर्ण टीका है। वैराग्य से भरी हुई है। किस पंक्ति का क्या अर्थ है इसकी चिंता छोड़ दीजिए। उस समय की जैसी सूझ-बूझ थी, वे टीका किये। लेकिन उनका वस्तु-विवेक सही है, वह वैराग्य रस से भरा है। साधकों को त्रिज्या समय-समय से पढ़ना चाहिए। उसमें वैराग्य और बोध दोनों हैं। “जासे तू सबको परखता है, सोई तेरा स्वरूप है।” “सबको अलगाय दिया” “अपने आप में स्थित हो गया।” जो कुछ मन-वाणी का व्यापार है, उसको अलग कर दिया और अपने आप में स्थित हो गया।

ना काहू सो काम है, ताको समुझ विचार। किसी से कोई प्रयोजन नहीं है। इस बात को समझो और विचारो। भंडारी कहें कि हमें किसी से प्रयोजन नहीं है, हम भंडार नहीं बनायेंगे। लेकिन भात-दाल-सब्जी से तो प्रयोजन है। खाना तो पड़ेगा ही। व्यवहार में तो परस्पर सबसे सबका प्रयोजन है। मूलतः जीव का किसी से प्रयोजन नहीं है। वही माई है, वही बाप है, वही गुरु है, वही पीर है, वही भगवान है, वही सबकुछ है जिसके साहचर्य से इस जीव का बंधन छूटता है। जिसकी वाणी से, विवेक से, रहनी से, ऐसी प्रेरणा मिले कि भटका हुआ मन स्थिर हो, वही हमारा सब कुछ है, प्यारा है। अंततः वह भी साथ नहीं है। साधु का संबंध भी नित्य नहीं रहेगा। बस, थोड़े दिन का संबंध है। साधु-गुरु के प्रति श्रद्धा-भाव रखें, अपना काम कर लें, बस।

पूरण आगम अगाध को, थाह लहै नहिं कोय ।

सो गुरु पारख ते निकट, बिन गुरु कछु नहिं होय ॥ 127 ॥

श्री पूरण साहेब कहते हैं कि जो अगम अगाध है उसकी कोई थाह नहीं पाता है। बिना गुरु पारख के कुछ नहीं होता है। इसलिए गुरु पारख से ही वस्तु निकट होती है। स्वरूप का ज्ञान बहुत कठिन है। बाहरी चीजों में रम जाना सरल है किन्तु अपने में रमना कठिन है। क्योंकि बाहरी चीजों का इंद्रियों से बोध होता है। वह सामने है, हम देख ही रहे हैं। जो स्वयं है, उस स्वयं में लौटना, स्वयं में आना, स्वयं को देखना कठिन है। स्वयं तो देखने वाला है। देखने वाले को देखना बड़ी मेहनत का काम है।

*प्रतिबोध विदितं मतममृतत्त्वं हि विन्दते।*

*आत्मना विन्दते वीर्यं विद्यया विन्दतेऽमृतम् ॥*

(केन उपनिषद् 2/4)

प्रतिबोध ही ज्ञान है। उसी से अमरता मिलती है। प्रति नाम लौटना। बाहर को जानना बोध है और अपने को जानना, अपने में लौट आना प्रतिबोध है। अपने में लौटने से अमरता होती है। सब कुछ छूटने वाला है, ऐसा मान कर मन में भय होता है। लेकिन संसार की कोई वस्तु मेरी नहीं है। मेरा तो अखण्ड खजाना, मेरा अपना चेतन स्वरूप है, इस ज्ञान में भय खत्म हो जाता है। एक दिन ऐसा आना है, जब सब कुछ छूटेगा। उस दिन का अभ्यास पहले से करना चाहिए। साधक जब बिस्तर पर लेटे आंखें बंद कर सोचे कि मेरा शरीर छूट गया है। संसार में मेरा कुछ भी नहीं है। इस भाव में विश्राम पा जाय। आंखें बंद करने पर अंधकार दिखाई देगा। तो यह न सोचे कि मुक्ति में ऐसा अंधकार रहेगा। वह तो देह सापेक्ष है। न वहां अंधकार है न प्रकाश है।

*शशि सूर रैन शारदी, तहाँ तत्त्व परलय नाहिं ॥ बीजक, हिण्डोला 1 ॥*

न वहां चांद है, न सूरज है, न सितारे हैं, न रात है, न दिन है, न वहां शरद आदि ऋतुएं हैं, और न कुछ है। आत्म-अस्तित्व तो शुद्ध-बुद्ध है, निरांत-शांत, निर्विकार, निर्मल है। मौत बहुत प्यारी है। सारे दृश्यों को खत्म कर देती है। इसलिए साधक को मौत से प्यार करना चाहिए, भय नहीं। भय तब तक है, जब तक शारीरिक कामनाएं शेष हैं। शारीरिक

कामनाओं का अंत हो जाने पर भय खत्म हो जाता है। स्वरूपस्थिति का अभ्यास खूब करना चाहिए। सेवा के बाद जितना अवसर पाये खूब अध्ययन-मनन करे। वैराग्य ही समाधि है। चित्त को समेट लेना ही ध्यान है। इसी में वैराग्य की पूर्णता है।

( कबीर मंदिर, प्रीतमनगर, इलाहाबाद

2 अक्तूबर, 1995 ई० )

---